डा० भगवानलाल भारती
संख्या ४८
पुस्तकालय
2753

ओ३म्

विदुरनीति

महाभारतीयोद्योगपर्वान्तर्गत

विदुरप्रजागरपर्वाऽपरनामिका

—

सा चेयम्

वेदप्रकाशाख्य मासिकपत्र सम्पादकेन

सामवेदभाष्यकारेण

तुलसीराम स्वामिना

देशभाषाटीकया संवलिता

स्वीये स्वामियन्त्रालये मुद्रिता

प्रकाशिता च

—दिनाङ्क

संवत् १९५५ वि० मई ९८ ई०

प्रथमवार १५००] [मूल्य ।=) जिल्द ।।)

ओ३म्

सामवेदभाष्यादि परमावश्यक कार्यों के वश अनव-काश की शीघ्रता में मैंने इसे पूर्ण किया है। इसलिये प्रार्थना है कि जो त्रुटि रह गई हों उन की सूचना पढ़ने वाले देते रहें, आगे सुधार दिया जायगा। यह नीति का परमोपयोगी ८ अध्याय का छोटासा पुस्तक है जिस के पढ़ने से विद्यार्थियों को चातुर्य्य, धर्म, नीति, व्यवहार तथा वक्तृता देने में बड़ी सहायता मिल सकी है॥

अनुवादपूरक—
तुलसीराम स्वामी

ओ३म्

विदुरनीतिः

—*—

वैशम्पायन उवाच

द्वाःस्थं प्राह महाप्राज्ञो धृतराष्ट्रो महीपतिः ॥
विदुरं द्रष्टुमिच्छामि तमिहानय मा चिरम् ॥ १ ॥

वैशम्पायन कहते हैं कि–पृथ्वी के स्वामी महाबुद्धिमान् धृतराष्ट्र–द्वारपाल (पौरिया) से बोले कि–विदुर को देखना चाहता हूं उन को जल्दी से यहां लाओ ॥ १ ॥

प्रहितो धृतराष्ट्रेण दूतः क्षत्तारमब्रवीत् ॥
ईश्वरस्त्वां महाराजो महाप्राज्ञ दिदृक्षति ॥ २ ॥

धृतराष्ट्र का भेजा हुआ दूत विदुर जीसे बोला–हे महाबुद्धिमान् ! ईश्वर (धृतराष्ट्र) महाराज आप को देखना चाहते हैं ॥ २ ॥

एवमुक्तस्तु विदुरः प्राप्य राजनिवेशनम् ।
अब्रवीद्धृतराष्ट्राय द्वाःस्थ मां प्रतिवेदय ॥ ३ ॥

इस प्रकार कहे हुवे विदुर राजभवन को पहुंच कर बोले कि हेद्वारपाल मेरा निवेदन धृतराष्ट्र से कहो ॥३॥

द्वाःस्थ उवाच

विदुरोऽयमनुप्राप्तो राजेन्द्र! तव शासनात् ।
द्रष्टुमिच्छति ते पादौ किं करोतु प्रशाधि माम् ।४।

द्वारपाल ने जाकर कहा—हे राजाओं के स्वामी! आप की आज्ञा से विदुर जी उपस्थित हैं, आप के चरण देखना चाहते हैं क्या करें यह मुझे आज्ञा दीजिये ॥४॥

धृतराष्ट्र उवाच

प्रवेशय महाप्राज्ञं विदुरं दीर्घदर्शिनम् ॥
अहं हि विदुरस्यास्य नाकल्पो जातु दर्शने ।५।

धृतराष्ट्र बोले—दीर्घदर्शी (दूर के सोचने वाले) महाबुद्धिमान् विदुर को भेजो हम इन विदुर के दर्शन (देखने) में कभी भी असमर्थ नहीं हैं ॥ ५ ॥

द्वाःस्थ उवाच

प्रविशान्तःपुरं क्षत्तर्महाराजस्य धीमतः ।
नहि ते दर्शनेऽकल्पो जातु राजाब्रवीद्धिमाम् ।६।

श्रीयुत ..... द्वारा
कार्यकुम ..... बैठ।
ता० [३] 20-12-18

द्वारपाल बोला—हे विदुर जी! बुद्धिमान् महाराज धृतराष्ट्र के भवन को चलिये वे आप के दर्शन को कभी भी असमर्थ नहीं, यह राजा ने मुझ से कहा है ॥ ६ ॥

वैशम्पायन उवाच

ततः प्रविश्य विदुरो धृतराष्ट्रनिवेशनम् ।
अब्रवीत्प्राञ्जलिर्वाक्यं चिन्तयानं नराधिपम् ।७।

वैशम्पायन जी कहते हैं—उस के बाद विदुर धृतराष्ट्र के भवन को प्राप्त होकर शोचते हुवे राजा से हाथ जोड़ कर बोले ॥ ७ ॥

विदुरोऽहं महाप्राज्ञ संप्राप्तस्तव शासनात् ॥
यदि किञ्चन कर्तव्यमयमस्मि प्रशाधि माम् ।८।

हे महाबुद्धिमान्! मैं विदुर आप की आज्ञा से आया हूं यदि कोई कार्य हो तो मैं उपस्थित हूं आज्ञा कीजिये ॥८॥

धृतराष्ट्र उवाच

सञ्जयो विदुर! प्राज्ञो गर्हयित्वा च मां गतः। अजातशत्रोः श्रेयोवाक्यं सभामध्ये स वक्ष्यति ॥९॥

धृतराष्ट्र बोले–हे विदुर ! बुद्धिमान् सञ्जय मेरी निन्दा करके चला गया और कल सभा में युधिष्ठिर के वचन कहेगा ॥ ९ ॥

तस्याद्य कुरुवीरस्य न विज्ञातं वचो मया ।
तन्मे दहति गात्राणि तदकार्षीत्प्रजागरम् । १० ।

उस कुरुवीर का वचन मैंने नहीं जाना वह मेरे अङ्गों को जलाता है उसीने प्रजागर (निद्रा का नाश) किया है॥

जाग्रतो दह्यमानस्य श्रेयो यदनुपश्यसि ॥
तद्ब्रूहि त्वं हिनस्तातधर्मार्थकुशलो ह्यसि । ११ ।

जागते हुवे जलते हुवे को जो भलाई तुम समझते हो वह मेरे लिये कहो क्योंकि धर्म अर्थ में तुम कुशलहो ॥

यतःप्राप्तः सञ्जयःपाण्डवेभ्यो न मे यथावन्मनसः प्रशान्तिः । सर्वेन्द्रियाण्यप्रकृतिं गतानि किं व-क्ष्यतीत्येव मेऽद्य प्रचिन्ता ॥ १२ ॥

जिस समय से पाण्डवों से सञ्जय आया तिस समय से ठीक २ मेरे मन को शान्ति नहीं है, सब इन्द्रियों ने अपने स्वभाव को छोड़ दिया है (संजय) क्या कहेगा,

यह मुझे आज चिन्ता है ॥ १२ ॥

विदुर उवाच

अभियुक्तं बलवता दुर्बलं हीनसाधनम् ।
हृतस्वं कामिनं चोरमाविशन्ति प्रजागराः ।१३।

विदुर जी कहते हैं-१ बलवान् से दबाये हुवे । २ दुर्बल । ३ सामग्री रहित । (धनादि सांसारिक पदार्थों से हीन) ।४ जिस का किसी ने धन चुरा लिया हो । ५ कामी । ६ चोर । इन को निद्रानाश रूप जागरण घेरता है ॥१३॥

कच्चिदेतैर्महादोषैर्न स्पृष्टोऽसि नराधिप ! ।
कच्चिच्च परवित्तेषु गृध्यन्न परितप्यसे ॥१४॥

हेराजा ! कहीं इन दोषों से तो नहीं स्पर्श (छुये) हुये हो (अर्थात् उपरोक्त ६ दोषों में से तो आप में कोई नहीं ?) या किसी दूसरे के धनों की इच्छा करते हुवे दुःखित तो नहीं होते हो ॥ १४ ॥

धृतराष्ट्र उवाच

श्रोतुमिच्छामि ते धर्म्यं परं नैःश्रेयसं वचः ।
अस्मिन्राजर्षिवंशे हि त्वमेकः प्राज्ञसम्मतः १५

धृतराष्ट्र बोले–हे विदुर आप के धर्मयुक्त परम कल्याण रूप वचनों को सुनना चाहता हूं क्योंकि इस राजर्षिवंश में तुम ही एक पण्डित हो ॥ १५ ॥

विदुर उवाच

राजा लक्षणसम्पन्नस्त्रैलोक्यस्याधिपो भवेत् ।
प्रेष्यस्ते प्रेषितश्चैव धृतराष्ट्र! युधिष्ठिरः ॥१६॥

विदुर जी कहते हैं–हे धृतराष्ट्र ! युधिष्ठिर जो राजाओं के लक्षणों से युक्त तीनों लोक के स्वामी होने योग्य और तुम्हारा सेवक है सो उस को वन को भेजा ॥ १६ ॥

विपरीततरश्च त्वं भागधेये न सम्मतः ।
अर्चिषां प्रक्षयाच्चैव धर्मात्मा धर्मकोविदः ॥१७॥

यद्यपि धर्मात्मा और धर्म के पण्डित हो तथापि नेत्रों के न होने से तुम राजाओं के लक्षणों से रहित हो इस से भागोचित नहीं ॥ १७ ॥

आनृशंस्यादनुक्रोशाद्धर्मात्सत्यात्पराक्रमात् ।
गुरुत्वात्त्वयि सम्प्रेक्ष्य बहून् क्लेशांस्तितिक्षते १८

युधिष्ठिर, हिंसाशील न होने से दयालु होने से धर्म

सत्य और पराक्रम से तुम में बड़प्पन को रखकर बहुत क्लेशों को सहते हैं ॥ १८ ॥

दुर्योधने सौबले च कर्णे दुःशासने तथा ।
एतेष्वैश्वर्यमाधाय कथं त्वं भूतिमिच्छसि ।१९।

दुर्योधन, सौबल, कर्ण तथा दुःशासनादि को राज्याधिकार देकर तुम किस प्रकार उन्नति चाहते हो ॥१९॥

आत्मज्ञानं समारम्भस्तितिक्षा धर्मनित्यता ।
यमर्थानापकर्षन्ति स वै पण्डित उच्यते ॥२०॥

जीवात्मा परमात्मा का ज्ञानी हो; अच्छे कार्यों का आरम्भ करता हो, सहन शील हो, और नित्य धर्म करता हो और अर्थ जिस को नहीं लुभाते उस को पण्डित कहते हैं ॥ २० ॥

निषेवते प्रशस्तानि निन्दितानि न सेवते ।
अनास्तिकः श्रद्दधान एतत्पण्डितलक्षणम् ।२१।

जो प्रशस्त (अच्छे) कार्य्यों को करता और निन्दित (बुरे) कार्य्यों को नहीं करता जो नास्तिक (वेदनिन्दक) नहीं है, श्रद्दालु (अच्छे कर्मों में प्रीति करने वाला)

हो यह पण्डित के लक्षण हैं ॥ २१ ॥

क्रोधो हर्षश्च दर्पश्च ह्रीस्तम्भो मान्यमानिता ।
यमर्थान्नापकर्षन्ति स वै पण्डित उच्यते ।२२।

क्रोध (गुस्सा), हर्ष (खुशी), अहंकार, लज्जा, धैर्य्य, अपने को कुछ मानना, ये जिस को अर्थ (प्रयोजन) से भ्रष्ट नहीं करते उसको पण्डित कहा जाता है ॥ २२ ॥

यस्य कृत्यं न जानन्ति मन्त्रं वा मन्त्रितं परे।
कृतमेवास्य जानन्ति स वै पण्डित उच्यते ।२३।

जिसके विचार तथा विचार किये हुवे कार्य कोई नहीं जानते हैं और सिद्ध हुवे कार्य को सब जानते हैं वही पण्डित कहाता है ॥ २३ ॥

यस्य कृत्यं न विघ्नन्ति शीतमुष्णं भयं रतिः ।
समृद्धिरसमृद्धिर्वा स वै पण्डित उच्यते ॥२४॥

जिस के कार्य को सर्दी गर्मी डर काम धनिता तथा निर्धनता नहीं बिगाड़ते वही पण्डित कहाता है ॥२४॥

यस्य संसारिणी प्रज्ञा धर्मार्थावनुवर्त्तते ।
कामादर्थं वृणीते यः स वै पण्डित उच्यते ।२५।

जिस की व्यावहारिक बुद्धि धर्म अर्थ के पीछे चलने वाली होती है और काम को छोड़ कर काम से अर्थ को ग्रहण करता है वही पण्डित कहाता है ॥२५॥

यथाशक्ति चिकीर्षन्ति यथाशक्ति च कुर्वते ।
न किञ्चिदवमन्यन्ते नराः पण्डितबुद्धयः ॥२६॥

जो शक्ति (ताक़त) के अनुसार करना चाहते हैं और शक्ति के अनुसार करते हैं और किसी का अपमान नहीं करते वही पण्डितों की सी बुद्धि वाले मनुष्य होते हैं ॥

क्षिप्रं विजानाति चिरं शृणोति,
विज्ञाय चार्थं भजते न कामात् ।
नासम्पृष्टो ह्युपयुङ्क्ते परार्थे,
तत्प्रज्ञानं प्रथमं पण्डितस्य ॥२७॥

जो देर तक सुनता है और जल्दी जान लेता है और जान कर अर्थ को सेवता है, काम को नहीं लेता और बिना पूछे परार्थ (दूसरे के कार्य में) नहीं बोलता यही पण्डित का प्रथम लक्षण है ॥ २७ ॥

नाप्राप्यमभिवाञ्छन्ति नष्टं नेच्छन्ति शोचितुम्।
आपत्सु च न मुह्यन्ति नराः पण्डितबुद्धयः ॥२८॥

जो अप्राप्य (नहीं मिलने वाली) वस्तु की इच्छा नहीं करते नष्ट हुवे का शोच नहीं करते और विपत्ति में जो नहीं घबड़ाते वही पण्डितों की सी बुद्धि वाले मनुष्य होते हैं ॥ ५३ ॥

निश्चित्य यः प्रक्रमते नान्तर्वसति कर्मणः।
अवन्ध्यकालो वश्यात्मा स वै पण्डित उच्यते २९

जो निश्चय करके कार्यों का आरम्भ करता और विघ्न होने पर भी कार्य को बीच में नहीं छोड़ता जिस का समय व्यर्थ नहीं जाता और जिस का मन वश में हो वही पण्डित कहाता है ॥ २९ ॥

आर्यकर्मणि रज्यन्ते भूतिकर्माणि कुर्वते।
हितं च नाभ्यसूयन्ति पण्डिता भरतर्षभ ! ।३०।

श्रेष्ठ कर्मों में जो प्रीति करते हैं, जिन से उन्नति हो ऐसे कार्य्यों को करते हैं और किसी के हित की निन्दा नहीं करते, हे धृतराष्ट्र ! वही पण्डित हैं ॥ ३० ॥

न हृष्यत्यात्मसंमाने नावमानेन तप्यते ।
गाङ्गो ह्रद इवाक्षोभ्यो यः स पण्डित उच्यते ३१

जो अपने आदर में प्रसन्न नहीं होता और न अनादर में दुःखित होता है, गङ्गा के कुण्ड के समान जो अक्षोभ्य होता है वही पण्डित कहाता है ॥३१॥

तत्त्वज्ञः सर्वभूतानां योगज्ञः सर्वकर्मणाम् ।
उपायज्ञो मनुष्याणां नरः पण्डित उच्यते ॥३२॥

सर्व प्राणियों के तत्त्व (असलियत) को जानने वाला और सब कार्य्यों के जोड़ को जाननेहारा और मनुष्यों के उपाय (तदबीर) को जानने वाला मनुष्य पण्डित कहा जाता है ॥ ३२ ॥

प्रवृत्तवाक्चित्रकथ ऊहवान् प्रतिभानवान् ।
आशु ग्रन्थस्य वक्ता च यः स पण्डित उच्यते ३३

जिस की वाणी प्रवृत्त हो (कहने में कहीं रुके ही नहीं चाहे जितना कहे), विचित्र (अनोखा) कहने वाला, तर्कवान्, नई बातों का ईजाद करने वाला, ग्रन्थ का जल्दी कहने वाला (कोई ग्रन्थ हो तत्काल कहने लगना

करना नहीं) वह पण्डित कहाता है ॥ ३३ ॥

श्रुतं प्रज्ञानुगं यस्य प्रज्ञा चैव श्रुतानुगा ।
असम्भिन्नार्यमर्यादः पण्डितास्त्यां लभेत सः ३४

शास्त्र जिस की बुद्धि के पीछे चलने वाला तथा बुद्धि शास्त्र के पीछे चलने वाली होती है और जो श्रेष्ठों की मर्य्यादा को नहीं तोड़ता वह पंखित नाम को पाता है ३४

अश्रुतश्च समुन्नद्धो दरिद्रश्च महामनाः ।
अर्थाश्चाकर्मणा प्रेप्सुर्मूढ इत्युच्यते बुधैः ।३५।

जो पढ़ा नहीं और अपने को पण्डित मानता हो और दरिद्री होकर बड़े मनोरथ वाला हो और बिना कर्म किये जो अर्थों को चाहता है, बुद्धिमान् उस को मूर्ख कहते हैं ॥ ३५ ॥

स्वमर्थं यः परित्यज्य परार्थमनुतिष्ठति ।
मिथ्याचरति मित्रार्थे यश्च मूढः स उच्यते ।३६।

अपने अर्थ को छोड़ कर दूसरे के अर्थ में जो अटकता है और मित्र के साथ में जो मिथ्या आचरण करता है वह मूर्ख कहा जाता है ॥ ३६ ॥

अकामान् कामयति यः कामयानान् परित्यजेत् ।
बलवन्तं च यो द्वेष्टि तमाहुर्मूढचेतसम् ॥३७॥

जो श्रद्धारहित कार्य्यों को करना चाहता है, श्रद्धा वालों को छोड़ता है और बलवान् से द्वेष करता है उस को मूर्ख के से चित्त वाला कहते हैं ॥ ३७ ॥

अमित्रं कुरुते मित्रं मित्रं द्वेष्टि हिनस्ति च ।
कर्म चारभते दुष्टं तमाहुर्मूढचेतसम् ॥३८॥

जो अमित्र से मित्रता करता और मित्र से द्वेष करता तथा मारता और दुष्ट कर्म्मों को करता है उस को मूर्ख के से चित्त वाला कहते हैं ॥ ३८ ॥

संसारयति कृत्यानि सर्वत्र विचिकित्सते ।
चिरं करोति क्षिप्रार्थेस मूढो भरतर्षभ ! ॥३९॥

हे धृतराष्ट्र ! जो कार्य्यों को तो बहुत फैलाता है परन्तु सर्वत्र शङ्का करता है, शीघ्रता वाले कार्य्यों में देर करता है वह मूर्ख है ॥ ३९ ॥

श्राद्धं पितृभ्यो न ददाति दैवतानि न चार्चति ।
सुहृन्मित्रं न लभते तमाहुर्मूढचेतसम् ॥ ४० ॥

जो श्रद्धा से अन्न जलादि से पित्रों का आदर और हवनादि मे देवतों का पूजन नहीं करता और अच्छे मित्र को जो नहीं प्राप्त करता उस को मूर्ख कैसे चित्त वाला कहते हैं ॥ ४० ॥

अनाहूतः प्रविशति अपृष्टो बहु भाषते ।
अविश्वस्ते विश्वसिति मूढचेता नराधमः ।४१।

जो बिना बुलाये कहीं जाता, बिना पूंछे बहुत बोलता है और अविश्वासी में विश्वास करता है वह मूर्ख चित्त वाला मनुष्यों में अधम है ॥ ४१ ॥

परं क्षिपति दोषेण वर्त्तमानः स्वयं तथा ।
यश्च क्रुध्यत्यनीशानः स च मूढतमो नरः ।४२।

जो दूसरे को दोष से दूषित करता और आप उसी से युक्त हो और जो असमर्थ हो कर क्रोध करता है वह मनुष्य अत्यन्त मूर्ख है ॥ ४२ ॥

आत्मनो बलमज्ञाय धर्मार्थपरिवर्जितम् ।
अलभ्यमिच्छन्नैष्कर्म्यान्मूढबुद्धिरिहोच्यते ।४३।

धर्म और अर्थ से रहित अपने बल को न जान कर बिना कर्म किये अप्राप्य की इच्छा करता हुआ पुरुष

यहां मूढ़बुद्धि कहा जाता है ॥ ४३ ॥

अशिष्यं शास्ति यो राजन्यश्चशून्यमुपासते ।
कदर्यं भजते यश्च तमाहुर्मूढचेतसम् ॥ ४४ ॥

हे राजन् ! जो अशिष्य को शिक्षा देता है, शून्य की उपासना करता है और निन्दित स्वामी की सेवा करता है उस को मूर्ख केसे चित्त वाला कहते हैं ॥ ४४॥

अर्थं महान्तमासाद्य विद्यामैश्वर्यमेव वा ।
विचरत्यसमुन्नद्धो यः स पण्डित उच्यते ।४५।

बहुत धन तथा विद्या वा ऐश्वर्य्य को प्राप्त होकर भी जो अभिमान रहित होकर विचरता है वही पण्डित कहाता है ॥ ४५ ॥

एकः सम्पन्नमश्नाति वस्ते वासश्च शोभनम् ।
योऽसंविभज्य भृत्येभ्यःको नृशंसतरस्ततः।४६।

जो अपने कुटुम्बियों को छोड़ अकेला स्वादु भोजन कर खाता है और अच्छे वस्त्रों को धारण करता है उस से बढ़ कर और कौन निन्दित होगा ॥ ४६ ॥

एकः पापानि कुरुते फलं भुङ्क्ते महाजनः ।
भोक्तारो विप्रमुच्यन्ते कर्त्ता दोषेण लिप्यते।४७।

एक पापों को करता है और महाजन (जन समुदाय अर्थात् उस के और साथी) फल को भोगते हैं, भोगने वाले छूट जाते हैं और कर्त्ता दोषी हो जाता है ॥ ४७ ॥

एकं हन्यान्न वा हन्यादिषुर्मुक्तो धनुष्मता ।
बुद्धिर्बुद्धिमतोत्सृष्टा हन्याद्राष्ट्रं सराजकम्।४८।

धनुष वाले से छोड़ा हुआ बाण एक को मारे वा न मारे, परन्तु बुद्धिमान् से छोड़ी हुई बुद्धि, राजा सहित देश को मारती है ॥ ४८ ॥

एकया द्वे विनिश्चित्य त्रींश्चतुर्भिर्वशे कुरु ।
पञ्चजित्वाविदित्वाषट्सप्त हित्वासुखीभव।४९।

एक (बुद्धि) से दो (सत् असत्) को जान कर चार (साम दाम दण्ड भेद से अथवा यमनियम आसन प्राणायाम) से (मध्यम उत्तम निकृष्ट वा काम क्रोध लोभ) तीन को वश में करे और पांच (इन्द्रियों) को जीत कर (सन्धि विग्रहादि) छः को जान कर सात (धर्मशास्त्र में कहे हुये व्यसनों) को छोड़ कर सुखी हो ॥ ४९ ॥

कं विषरसो हन्ति शस्त्रेणैकश्च वध्यते ।
राष्ट्रं सप्रजं हन्ति राजानं मन्त्रविप्लवः ।५०।

विषरस एक को मारता है और शस्त्र से भी एक मारा जाता है परन्तु मन्त्र (विचार) का विप्लव (बिगाड़) राजा को देश तथा प्रजासहित नष्ट कर देता है ॥ ५० ॥

एकः स्वादु न भुञ्जीत एकश्चार्थान्न चिन्तयेत् ।
एको न गच्छेदध्वानं नैकः सुप्तेषु जागृयात् ।५५।

अकेला स्वादिष्ठ भोजन न खावे और अकेला अर्थों को न विचारे, मार्ग में अकेला न जावे, बहुत से सोते हुओं में अकेला न जागे ॥ (अर्थात् अकेला स्वादुखाने से पापी होता है क्योंकि ऊपर अकेले खाने वाले को निन्दित कहा है, अकेले अर्थ को विचारने से शायद उस का फल खराब हो और संसार में हँसी हो, रास्ते में अकेले जाने से शायद कोई विपत्ति पड़े तो उस का कोई सहायक सिवाय उस के नहीं और यदि दो हों तो एक दूसरे का सहाय करें सोते हुओं में अकेला जागना यों बुरा है कि यदि कोई वस्तु खो जावे तो प्रथम जगने वाले पर दोषारोपण किया जा सकता है) ॥ ५१ ॥

एकमेवाद्वितीयं तद्यद्राजन्नावबुध्यसे ।
सत्यं स्वर्गस्य सोपानं पारावारस्य नौरिव ।५२।

हे धृतराष्ट्र! एक ही अद्वितीय (बे मिसाल) संसाररूपी समुद्र के लिये नौका के तुल्य और स्वर्ग की सीढ़ी "सत्य" है उस को तुम नहीं जानते हो ॥ ५२ ॥

एकः क्षमावतां दोषो द्वितीयो नोपपद्यते ।
यदेनं क्षमया युक्तमशक्तं मन्यते जनः ॥५३॥

क्षमावान् पुरुषों में एक ही दोष है दूसरा नहीं अर्थात् जब यह क्षमायुक्त होते हैं तो मनुष्य इन को अशक्त(निर्बल) मानते हैं ॥ ५३ ॥

सोऽस्य दोषो न मन्तव्यः क्षमा हि परमं बलम् ।
क्षमा गुणो ह्यशक्तानां शक्तानां भूषणं क्षमा ॥५४॥

यह इन का दोष नहीं मानना चाहिये क्योंकि क्षमा ही बड़ा बल है अशक्तों का तो क्षमा गुण ही है पर शक्तों (सबलों) का भी भूषण (ज़ेवर) है ॥५४॥

क्षमा वशीकृतिर्लोके क्षमया किं न साध्यते ?।
शान्तिखड्गः करे यस्य किं करिष्यति दुर्जनः ५५

क्षमा संसार को वश में करने वाली है, क्षमा से क्या नहीं सिद्ध होता (अर्थात् सब होता है) शान्तिरूपी

तलवार जिस के हाथ में है उस का दुष्ट पुरुष क्या करेगा (कुछ नहीं) ॥५५॥

अतृणे पतितो वह्निः स्वयमेवोपशाम्यति ।
अक्षमावान्परं दोषैरात्मानं चैव योजयेत् ॥५६॥

क्योंकि जहां तिनके (घास फूस आदि) न हों वहां गिरा हुआ अग्नि स्वयमेव शान्त हो (बुत) जाता है क्षमा रहित पुरुष बड़े दोषों से अपने को युक्त कर लेता है॥५६॥

एको धर्मः परं श्रेयः क्षमैका शान्तिरुत्तमा ।
विद्यैका परमा तृप्तिरहिंसैका सुखावहा ॥५७॥

एक धर्म ही परम कल्याण है और क्षमा ही एक उत्तम शान्ति है और विद्या ही एक परम तृप्ति है और अहिंसा ही एक सुख को देने वाली है ॥ ५७ ॥

द्वाविमौ ग्रसते भूमिः सर्पो विलशयानिव ।
राजानं चाविरोद्धारं ब्राह्मणं चाप्रवासिनम् ॥५८॥

जैसे सर्प बिल में रहने वाले मूसादि को खाजाता है तैसे ही पराक्रमहीन राजा तथा अप्रवासी (घर में से न निकलने वाले) ब्राह्मण को भूमि खा जाती है (भूमि को दूसरे पराक्रमी मनुष्य छीन लेते हैं तथा ब्राह्मण लोग भूखों

मरते क्योंकि विना परदेश गये विद्याध्ययनादि नहीं हो सकता फिर ब्राह्मण को कोई नहीं पूछता) ॥५८॥

हे कर्मणी नरः कुर्वन्नस्मिँल्लोके विराजते ।
अब्रुवन्परुषं किञ्चिदसतोऽनर्चयंस्तथा ॥५९॥

मृदु बोलता हुआ तथा असत् (खोटे) पुरुषों का सत्कार न करता हुआ ही मनुष्य इस संसार में शोभित होता है ॥ ५९ ॥

द्वाविमौ पुरुषव्याघ्र ! परप्रत्ययकारिणौ ।
स्त्रियः कामितकामिन्यो लोकः पूजितपूजकः ६०

हे पुरुषश्रेष्ठ (धृतराष्ट्र !) ये दो दूसरे के निश्चय से कार्य्य करने वाले हैं-स्त्रियां अन्य की चाही वस्तु को (हर्षसे) चाहने वाली होती हैं और लोग पूजित को पूजने लगते हैं (अर्थात् संसार गतानुगतिक है) ॥ ६० ॥

द्वाविमौ कण्टकौ तीक्ष्णौ शरीरपरिशोषिणौ ।
यश्चाधनः कामयते यश्च कुप्यत्यनीश्वरः ॥६१॥

दो तेज कांटे शरीर को सुखाने वाले हैं १-जो निर्धन होके इच्छा करता (यह चाहता कि महल वस्त्रादि सुख

की सामग्री मेरे भी हो पर पास कुछ नहीं) और २–जो अनधिकारी हो के क्रोध करे (व्यर्थ अपने शरीर को सुखाता है) ॥६१॥

द्वावेव न विराजेते विपरीतेन कर्मणा ।
गृहस्थश्च निरारम्भः कार्यवांश्चैव भिक्षुकः ॥६२॥

गृहस्थ कुछ कार्य्य न करे और भिक्षुक कार्य्यवान् हो यह दोनों विपरीत कर्म से शोभित नहीं होते ॥ ६२ ॥

द्वाविमौ पुरुषौ राजन्स्वर्गस्योपरि तिष्ठतः ।
प्रभुश्च क्षमया युक्तो दरिद्रश्च प्रदानवान् ॥६३॥

हे धृतराष्ट्र ! यह दो पुरुष स्वर्ग को पाते हैं–ऐश्वर्य्यवान् क्षमा से युक्त हो और दरिद्री दान देने वाला हो ६३

न्यायागतस्य द्रव्यस्य बोद्धव्यौ द्वावतिक्रमौ ।
अपात्रे प्रतिपत्तिश्च पात्रे चाप्रतिपादनम् ॥६४॥

न्याय से आये हुये द्रव्य के दो अतिक्रम (उल्टेपन) हैं १–अपात्र (अयोग्य) में देना, २–पात्र (योग्य) में न देना ॥६४॥

द्वावम्भसि निवेष्टव्यौ गले बद्ध्वा दृढां शिलाम् ।
धनवन्तमदातारं दरिद्रं चातपस्विनम् ॥ ६५ ॥

न दान देने वाले धनवान्, अतपस्वी (तपस्वी न होना) दरिद्री। इन दोनों के गले में भारी शिला बान्ध कर जल (में डुबा देना चाहिये ॥६५॥

द्वाविमौ पुरुषव्याघ्र ! सूर्यमण्डलभेदिनौ।
परिव्राड्योगयुक्तश्च रणे चाभिमुखो हतः ॥६६॥

हे धृतराष्ट्र! ये दो सूर्य्य मण्डल को भेदन करने वाले सूर्य्यमण्डल के प्रकाश के तुल्य चिरकाल के लिये अपनी कीर्ति के स्थापन करने वाले) हैं संन्यासी योगाभ्यासी, और सामने रण (युद्ध) में मरने वाला ॥६६॥

त्रयः पापा मनुष्याणां श्रूयन्ते भरतर्षभ ! ।
कनीयान्मध्यमः श्रेष्ठ इति वेदविदो विदुः ॥६७॥

हे धृतराष्ट्र! मनुष्यों के तीन प्रकार के पाप सुने जाते हैं उत्तम मध्यम और निकृष्ट यह वेद के जानने वाले जानते हैं ॥६७॥

त्रिविधाः पुरुषा राजन्नुत्तमाधममध्यमाः ।
नियोजयेद्यथावत्तांस्त्रिविधेष्वेव कर्मसु ॥ ६८ ॥

हे राजा ! उत्तम मध्यम और नी तीन प्रकार के

पुरुष हैं उन को वैसे ही तीन (उत्तम मध्यम और निकृष्ट) कार्य्यों में लगावे ॥६८॥

त्रय एवाधना राजन्भार्या दासस्तथा सुतः ।
यत्ते समधिगच्छन्ति यस्य ते तस्य तद्धनम् ॥६९॥

हे राजा ! स्त्री, दास, तथा पुत्र, यह तीनों पराधीन हैं वे जिस के पास जाते हैं इन का धन, उसी का हो जाता है (अर्थात् ये तीनों क्रम से पति स्वामी तथा पिता इन के आश्रय रहते हैं) ॥६९॥

हरणं च परस्वानां परदाराभिमर्शनम् ।
सुहृदश्च परित्यागस्त्रयो दोषाः क्षयावहाः ॥७०॥

दूसरे के धनों को चुरा लेना, दूसरों की स्त्रियों का संग करना, अच्छे मित्र का छूटना यह तीनों दोष नाश करने वाले हैं ॥७०॥

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः ।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत् ॥७१॥

आत्मा (अपने) को नाश करने वाले तीन प्रकार के यह नरक के द्वार हैं—काम, क्रोध, तथा लोभ; इस से इन

तीनों को छोड़ दे ॥७१॥

वरप्रदानं राज्यं च पुत्रजन्म च भारत ! ।
शत्रोश्च मोक्षणं कृच्छ्रात्त्रीणि चैकं च तत्समम् ७२

हे धृतराष्ट्र ! वर का देना और राज्य का देना और पुत्र का जन्म यह तीनों "शत्रु को कठिन दुःख से छुड़वाना" इस एक के तुल्य हैं ॥७२॥

भक्तं च भजमानं च तवास्मीति च वादिनम् ।
त्रीनेतांश्छरणं प्राप्तान्विषमेऽपि न सन्त्यजेत् ७३

भक्त और भजमान (जिस ने सेवा की जो अब सेवक है) और "मैं आप का हूं" इस प्रकार कहने वाले इन तीनों शरण प्राप्त हुओं को आपत्ति समय में भी न छोड़े।७३।

चत्वारि राज्ञा तु महाबलेन,
वर्ज्यान्याहुः पण्डितस्तानि विद्यात् ।
अल्पप्रज्ञैः सह मन्त्रं न कुर्या,
न्न दीर्घसूत्रैरभसैश्चारणैश्च ॥७४॥

महाबलवान् राजा को चार बातें वर्जित हैं और उन को पण्डित जाने। [illegible] वाले के साथ विचार

2753
परिग्रहण संख्या
दयानन्द महिला

न करे और न दीर्घसूत्र (आज नहीं कल करूंगा कल नहीं परसों इस प्रकार कहने वाले आलसी) से और न विचाररहित जल्दबाज़ से और भाट (तारीफ़ करने वाले) के साथ भी विचार नहीं करे ॥७४॥

चत्वारि ते तात! गृहे वसन्तु
श्रियाभिजुष्टस्य गृहस्थधर्मे ।
वृद्धो ज्ञातिरवसन्नः कुलीनः
सखा दरिद्रो भगिनी चानपत्या ॥ ७५ ॥

हे तात ! गृहस्थ धर्म में वर्त्तमान लक्ष्मीसहित तेरे गृह में, भाई आदि कोई कुटुम्बी बूढ़ा दुःखी हुआ कुलीन, दरिद्री मित्र और बिना सन्तति वाली भगिनी ये चार बसें (रहने पावें) ॥७५॥

चत्वार्याह! महाराज साद्यस्कानि बृहस्पतिः ।
पृच्छते त्रिदशेन्द्रायतानीमानि निबोध मे ॥७६॥

हे महाराज! पूंछते हुये इन्द्र के लिये बृहस्पति तात्कालिक (ताज़ी) चार बातें कहते हैं । वे ये हैं, मुझ से समझो ॥ ७६ ॥

देवतानां च संकल्पमनुभावं च धीमताम् ।
विनयं कृतविद्यानां विनाशं पापकर्मणाम् ॥७७॥

कि देवताओं (विद्वानों) का सङ्कल्प (इरादा), बुद्धिमानों का अनुभव (निश्चय), विद्या पढ़े हुओं का विनय और पापियों का नाश ॥७७॥

चत्वारि कर्माण्यभयङ्कराणि
भयं प्रयच्छन्त्ययथाकृतानि ।
मानाग्निहोत्रमुत मानमौनं
मानेनाधीतमुतमानयज्ञः । ७८ ।

मान (प्रमाण) से अग्निहोत्र तथा प्रमाण से मौन होना और प्रमाण से पढ़ना और प्रमाण से ही यज्ञ करना ये चार कर्म अभय (निर्भय) करने वाले हैं उल्टे करने से भय के देने वाले हैं ॥ ७८ ॥

पञ्चाग्नयोमनुष्येण परिचयाः प्रयत्नतः ।
पिता माताग्निरात्मा च गुरुश्च भरतर्षभ !॥७९।

हे धृतराष्ट्र ! मनुष्य को इन पांच अग्निवत्तेजस्वियों का सेवन करना चाहिये—१ पिता २ माता ३ अग्नि ४ आत्मा

और ५ गुरु ॥ ७९ ॥

पञ्चैव पूजयंल्लोके यशः प्राप्नोति केवलम् ।
देवान्पितॄन्मनुष्यांश्चभिक्षूनतिथिपञ्चमान् ।८०।

और देवता, माता, पिता, मनुष्य, भिक्षुक, और पांचवें अतिथि इन पांच को ही पूजता हुआ मनुष्य केवल यश (कीर्त्ति) को प्राप्त होता है ॥ ८० ॥

पञ्च त्वानुगमिष्यन्तियत्र यत्र गमिष्यसि ।
मित्राण्यमित्रामध्यस्था उपजीव्योपजीविनः ८१

जहां २ तू जायगा वहां वहां १–मित्र और २–अमित्र और ३–मध्यस्थ (साधारण किसी में नहीं) और ४–जिन के आश्रय तू जियेगा और ५–जो तेरे आश्रय जियेंगे ये पांच तेरे पीछे जायंगे ॥ ८१ ॥

पञ्चेन्द्रियस्य मर्त्यस्य छिद्रं चेदेकमिन्द्रियम् ।
ततोऽस्य स्रवति प्रज्ञा दृतेः पात्रादिवोदकम् ८२

पांच इन्द्रिय वाले मनुष्य की एक इन्द्रिय छिद्र है उस से इस की बुद्धि टपकती है जैसे चमड़े के डोल से पानी छिद्र होने से ॥ ८२ ॥

षड्दोषाः पुरुषेणेह हातव्या भूतिमिच्छता ।
निद्रा तन्द्रा भयं क्रोध आलस्यं दीर्घसूत्रिता ८३

उन्नति चाहने वाले पुरुष को नींद, तन्द्रा (कुछ सोना कुछ न सोना), डर, गुस्सा, आलस, दीर्घसूत्रिता, (सुस्ती) ये छः दोष छोड़ देने चाहियें ॥ ८३ ॥

षडिमान्पुरुषो जह्याद्विन्नां नावमिवार्णवे ।
अप्रवक्तारमाचार्यमनधीयानमृत्विजम् । ८४ ।

पुरुष इन छः को छोड़ देवे जैसे टूटी नाव को समुद्र में छोड़ देते हैं-१-न पढ़ाने वाले आचार्य्य, २-विना पढ़े हुये ऋत्विक् को ॥ ८४ ॥

अरक्षितारं राजानं भार्यां चाप्रियवादिनीम् ।
ग्रामकामं च गोपालं वनकामं च नापितम् ॥८५॥

३-रक्षा नहीं करने वाले राजा को ४-कटु बोलनेवाली स्त्री को ५-ग्राम में रहने वाले गोपाल को (क्योंकि गौओं के पालने वाले को वन में रहकर पालन करना चाहिये) ६-तथा वन में रहने वाले नाई को (क्योंकि उसका काम ग्राम में होता है) ॥ ८५ ॥

षडेव तु गुणाः पुंसा न हातव्याः कदाचन ।
सत्यं दानमनालस्यमनसूया क्षमा धृतिः ॥८६॥

मनुष्य को यह छः गुण १ सत्य २ दान ३ आलस्य का न होना ४ निन्दा न करना ५ क्षमा ६ धैर्य कभी भी नहीं छोड़ना चाहिये ॥८६॥

अर्थागमो नित्यमरोगिता च,
प्रिया च भार्या प्रियवादिनी च ।
वश्यश्च पुत्रोऽर्थकरी च विद्या,
षड् जीवलोकस्य सुखानि राजन् ! ॥८७॥

हे राजा ! जीव लोक के १ अर्थ (धन) का आगमन २ नित्य अरोगी होना ३ स्त्री प्यारी, और ४ मृदु बोलने वाली ५ पुत्र वश में हो ६ विद्या अर्थ करने वाली ये छः सुख हैं ॥८७॥

षण्णामात्मनि नित्यानामैश्वर्यं योऽधिगच्छति ।
न स पापैः कुतोऽनर्थैर्युज्यते विजितेन्द्रियः ८८

जो मनुष्य अपने पांच इन्द्रिय और छठे मन को वश में कर लेता है व जितेन्द्रिय (इन्द्रियों को जीतने वाला) पापों से युक्त नहीं होता तो अनर्थों से

कहां ॥ ८८ ॥

षडिमे षट्सु जीवन्ति सप्तमो नोपलभ्यते ।
चौराःप्रमत्ते जीवन्ति व्याधितेषु विकित्सकाः ८९

यह छः छः में जीते हैं सातवां नहीं प्राप्त होता १ बेहोशों में चोर २ रोगियों में वैद्य ॥८९॥

प्रमदाः कामयानेषु यजमानेषु याजकाः ।
राजा विवदमानेषु नित्यं मूर्खेषु पण्डिताः ।९०।

३ स्त्रियां कामियों में ४ यजमानों में याजक ५ राजा झगड़ालुओं में और ६ नित्य मूर्खों में पण्डित ॥९०॥

षडिमानि विनश्यन्ति मुहूर्तमनवेक्षणात् ।
गावः सेवा कृषिर्भार्या विद्या वृषलसङ्गतिः ।९१।

एक क्षण भर के ही प्रमाद (बेहोशी) से यह छः बिगड़ जाते हैं १ गऊ २ सेवा ३ खेती ४ स्त्री ५ विद्या ६ और नीच का साथ ॥ ९१ ॥

षडेते ह्यवमन्यन्ते नित्यं पूर्वोपकारिणम् ।
आचार्य शिक्षिताःशिष्याःकृतदाराश्चमातरम् १२

यह छः नित्य पूर्व उपकार करने वालों का अनादर करते हैं १ शिक्षित हुवे शिष्य अध्यापक को, २ और खी वाले माता को ॥ ९२ ॥

नारीं विगतकामास्तु कृतार्थश्च प्रयोजकम् ।
नावं निस्तीर्णकान्तारा आतुराश्च चिकित्सकम् ९३

३ काम जिनका नष्ट होगया ऐसे स्त्री को, ४ और जिन का अर्थ सिद्ध होगया वे जिस से सिद्ध हुआ उसे, ५ जल-रूप वन से पार हुवे नाव को, ६ रोग से मुक्त हुवे वैद्य को॥९३॥

आरोग्यमानृण्यमविप्रवासः
सद्भिर्मनुष्यैः सह सम्प्रयोगः ।
स्वप्रत्ययावृत्तिरभीतवासः
षड् जीवलोकस्य सुखानि राजन्! ।९४।

हे राजा! जीवलोक के १ आरोग्य होना २ ऋणी न होना ३ परदेश में नहीं रहना ४ सत्पुरुषों से मेल ५ अपने अनुकूल जीविका ६ निडर रहना ये छः सुख हैं ॥ ९४ ॥

ईर्षुर्घृणी न संतुष्टः क्रोधनो नित्यशङ्कितः ।
परभाग्योपजीवी च षडेते नित्यदुःखिताः ।९५।

१ ईर्षा करने वाला २ दयालु ३ असन्तुष्ट ४ क्रोधी ५ नित्य शोक में मग्न रहता हो ६ और जो दूसरे के सहारे जीने वाला यह छः निरय दुखी हैं ॥ ९५ ॥

सप्त दोषाः सदा राज्ञा हातव्या व्यसनोदयः ।
प्रायशो यैर्विनश्यन्ति कृतमूला अपीश्वराः।९६ ।

व्यसनों के उदय (उत्पन्न) करने वाले सात दोषों को राजा को छोड़ना चाहिये प्रायः इन से बड़े २ राजा भी नाश को प्राप्त होजाते हैं ॥ ९६ ॥

स्त्रियोऽक्षा मृगया पानं वाक्पारुष्यं च पञ्चमम् ।
महच्च दण्डपारुष्यमर्थदूषणमेव च ॥९७॥

१ स्त्रियों के साथ गमन करना २ पांसा खेलना ३ शिकार खेलना ४ मदिरा पीना ५ कटु बोलना ६ कठिन दण्ड देना और ७ धन का बिगाड़ना ॥ ९७ ॥

अष्टौ पूर्वनिमित्तानि नरस्य विनाशिष्यतः ।
ब्राह्मणान्प्रथमं द्वेष्टि ब्राह्मणैश्च विरुध्यते ॥९८॥

नाश होते हुवे मनुष्य के आठ पूर्व कारण हैं १ प्रथम ब्राह्मण से द्वेष करना २ विरोध करना ॥९८॥

ब्राह्मणस्वानि चादत्ते ब्राह्मणांश्च जिघांसति ।
रमते निन्दया चैषां प्रशंसां नाभिनन्दति ॥९९॥

३ ब्राह्मणों के धनों को लेना और ४ ब्राह्मणों को मारना और ५ इन की निन्दा में प्रसन्न होना और६ प्रशंसा सुन कर अप्रसन्न होना (नहीं चाहना) ॥९९॥

नैनान्स्मरति कृत्येषु याचितश्चाभ्यसूयति ।
एतान्दोषान्नरः प्राज्ञो बुध्येद्बुध्वा विसर्जयेत् १००

७ कार्यों में जो इन को नहीं बुलाता और ८ मांगने से निन्दा करता (नहीं देता) बुद्धिमान् मनुष्य इन दोषों को जाने और जानकर छोड़ देवे ॥१००॥

अष्टाविमानि हर्षस्य नवनीतानि भारत ।
वर्त्तमानानि दृश्यन्ते तान्येव स्वसुखान्यपि १०१

हे भारत ! ये आठ हर्ष के नवनीत (जैसे दूध का सार मक्खन वैसे ही हर्ष के सार) वर्त्तमान दीखते हैं वे ही अपने सुख हैं ॥ १०१ ॥

समागमश्च सखिभिर्महांश्चैव धनागमः ॥
पुत्रेण च पारष्वङ्गः संनिपातश्च मैथुने ॥ १०२॥

मित्रों से समागम (मुलाकात), बहुत धन का आना (प्राप्त होना) पुत्र से मिलना, और मैथुन में गिरना ॥ १०२ ॥

समये च प्रियालापः स्वयूथ्येषुसमुन्नतिः ॥
अभिप्रेतस्य लाभश्च पूजा च जनसंसदि।१०३।

समय पर प्रिय बोलना, और अपने समूह में उन्नति (तरक्की), चाहे हुवे वस्तु की प्राप्ति (मिलना), और मनुष्यों में आदर होना ॥१०३॥

अष्टौ गुणाः पुरुषं दीपयन्ति,
प्रज्ञा च कौल्यंच दमः श्रुतं च।
पराक्रमश्चाबहुभाषिता च,
दानं यथाशक्ति कृतज्ञता च ।१०४।

ये आठ गुण मनुष्य को प्रकाशित करते हैं १ बुद्धि २ कुलीनता होना ३ इन्द्रियादिकों को रोकना ४ वेद ५ पराक्रम (दिलेरी) ६ थोड़ा बोलना ७ यथाशक्ति दान ८ किये हुये का उपकार मानना ॥ १०४ ॥

नवद्वारमिदं वेश्म त्रिस्थूणं पञ्चसाक्षिकम् ।
क्षेत्रज्ञाधिष्ठितं विद्वान्यो वेद स परः कविः।१०५।

यह शरीररूप गृह में नव द्वारे है तीन खम्भ (सत्व रज तम रूप अथवा दो गोड़े और कमर की हड्डी) हैं और पांच इन्द्रिय साक्षी (गवाह) हैं उस में जीव रहता है जो यह जानता है वही विद्वान् परमचतुर है ॥१०५॥

दश धर्मं न जानन्ति धृतराष्ट्र! निबोध तान् ।
मत्तः प्रमत्त उन्मत्तः श्रान्तः क्रुद्धो बुभुक्षितः।१०६।

हे धृतराष्ट्र ! ये दश धर्म्म को नहीं जानते उन को जानो १ नशे से बेहोश २ धनादि ऐश्वर्य से तथा ३ शरीर में रोग होने से बेहोश ४ थका हुआ ५ क्रोधी ६ भूखा ॥१०६॥

त्वरमाणश्च लुब्धश्च भीतः कामी च ते दश ।
तस्मादेतेषु सर्वेषु न प्रसज्जेत पण्डितः।१०७।

७ जल्दबाज़ ८ लोभी ९ डरपोक १० कामी । इसलिये पण्डित इन सब से मेल न करे ॥१०७॥

अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
पुत्रार्थमसुरेन्द्रेण गीतं वैव सुधन्वना ॥१०८॥

पुत्र के लिये प्रह्लाद ने सुधन्वा के साथ (असत्य नहींबोला) कहे इस पुराने इतिहास को इस विषय में कहते हैं ॥१०८॥

यः काममन्यू प्रजहाति राजा, पात्रे प्रतिष्ठापयते धनं च। विशेषविच्छ्रुतवान् क्षिप्रकारी, तं सर्वलोकः कुरुते प्रमाणम् ॥१०९॥

जो राजा काम और क्रोध को छोड़ देता है, पात्र (देने योग्य) में धन देता है और विशेष (असलियत) को जाननेहारा, पढ़ा हुआ कार्य्यों को शीघ्र करनेहारा होता है उस की बात को सब संसार मानता है ॥१०९॥

जानाति विश्वासयितुं मनुष्या, न्विज्ञातदोषेषु दधाति दण्डम्। जानाति मात्रां च तथा क्षमाञ्च, तं तादृशं श्रीर्जुषते समग्रा ॥११०॥

जो मनुष्यों को विश्वास दिलाना जानता है, दोष जानने पर दोषियों को दण्ड देता है, जो प्रमाण और क्षमा को जानता है उस वैसे मनुष्य का लक्ष्मी पूर्ण रूप से सेवन करती है ॥ ११० ॥

सुदुर्बलं नावजानाति कञ्चिद्युक्तो रिपुं सेवते बुद्धिपूर्वम्। न विग्रहं रोचयते बलस्थैः, काले च यो विक्रमते स धीरः ।१११।

जो किसी दुर्बल को दुःख नहीं देता, युक्ति से बुद्धि पूर्वक दुश्मन के साथ बर्त्ताव करता है, जो बलवानों से लड़ाई नहीं करता, और जो समय पर पराक्रम दिखाता है वही धीर है ॥१११॥

प्राप्यापदं न व्यथते कदाचिदुद्योगमन्विच्छति चाप्रमत्तः । दुःखं च काले सहते महात्मा धुरन्धरस्तस्य जिताः सपत्नाः ॥ ११२ ॥

जो विपत्ति पड़े कभी भी दुःखी नहीं होता और निरालसी होकर उद्योग करता है, समय पड़े दुःख भी सहता है, वही भार को उठाने वाला महात्मा सब शत्रुओं को जीतता है ॥११२॥

अनर्थकं विप्रवासं गृहेभ्यः पापैः सन्धिं परदाराभिमर्शम् । दम्भं स्तैन्यं पैशुनं मद्यपानं नसेवते यश्च सुखी सदैव ॥११३॥

जो अनर्थ, घर से बाहर रहना, पापों से मेल, दूसरों की स्त्रियों का सेवन करना, पाखण्ड, चोरी, चुगली, मद्यपान, इन का सेवन नहीं करता वही हमेशा सुखी रहता है॥

न संरम्भेणारभते त्रिवर्गमाकारितः शंसति तत्त्वमेव । न मित्रार्थे रोचयते विवादं नापूजितः कुप्यति चाप्यमूढः ॥११४॥

धर्म अर्थ काम का जल्दी विना विचारे आरम्भ नहीं करता और पूंछने से असली बात को कहता है और मित्र के साथ जो विवाद नहीं करता और अपूजित (अनादर पाके) क्रोधित नहीं होता वही बुद्धिमान् है ॥

न योऽभ्यसूयत्यनुकम्पते च न दुर्बलः प्रातिभाव्यं करोति । नात्याह किञ्चित्क्षमते विवादं सर्वत्र तादृग्लभते प्रशंसाम् ॥ ११५ ॥

जो किसी के सुखादि को देखकर डाह नहीं करता और दुर्बल से विरोध नहीं करता और बहुत नहीं बोलता तथा विवाद को सह लेता है ऐसा पुरुष सर्वत्र प्रशंसा पाता है ॥११५॥

यो नोद्धतं कुरुते जातु वेषं न पौरुषेणापि विकत्थतेऽन्यान् । न मूर्च्छितः कटुकान्याह किञ्चित्प्रियं सदा तं कुरुते जनो हि ॥ ११६ ॥

जो कभी उद्धत (घमण्डी) वेष नहीं करता और अपने पुरुषार्थ की स्वयं प्रशंसा नहीं करता और जो थोड़ी भी कड़ुई बात नहीं कहता, संसार उस से सदा प्यार का बर्त्ताव करता है ॥१६॥

न वैरमुद्दीपयति प्रशान्तं न दर्पमारोहति नास्तमेति। न दुर्गतोऽस्मीति करोत्यकार्यंतमार्यशीलं परमाहुरार्याः ॥ ११७ ॥

जो शान्त हुये वैर (दुश्मनी) को पुनः प्रज्वलित नहीं करता और जो घमण्ड नहीं करता, न नाश को प्राप्त होता और मैं दुर्बल हूं ऐसा कह के जो अकार्य (दुष्कर्म) नहीं करता उस को श्रेष्ठ आर्यशील (श्रेष्ठों के शील वाला) कहते हैं ॥११७॥

न स्वे सुखे वै कुरुते प्रहर्षं नान्यस्य दुःखे भवति प्रहृष्टः। दत्त्वा न पश्चात्कुरुतेऽनुतापं स कथ्यते सत्पुरुषार्यशीलः ॥ ११८ ॥

जो अपने सुख में हर्षित नहीं होता (किन्तु सब के सुख में) और दूसरे के दुःख को देखकर जो प्रसन्न नहीं

होता, देकर पीछे पश्चात्ताप नहीं करता, वह सत्पुरुषों से आर्यशील कहाता है ॥११८॥

देशाचारान्समयान्जातिधर्मान्बुभूषते यः स परावरज्ञः। स यत्र तत्राभिगतः सदैव महाजनस्याधिपत्यं करोति ॥ ११९ ॥

जो देश के व्यवहारों को तथा समय और जाति के धर्मों के अनुसार व्यवहार करता है वह आदि और अन्त का जानने वाला है और वह जहां तहां गया हुआ भी सदा श्रेष्ठ मनुष्यों के ऊपर राज्य करता है ॥११९॥

दम्भं मोहं मत्सरं पापकृत्यं राजद्विष्टं पैशुनं पूगवैरम् । मत्तोन्मत्तैर्दुर्जनैश्चापि वादं यः प्रज्ञावान् वर्जयेत्स प्रधानः ॥ १२० ॥

जो बुद्धिमान् दम्भ (योग्यता से अधिक दिखाना), अभिमान, पापों के कर्म, राजा से द्वेष, चुगली, किसी समूह के साथ वैर, मत वाले तथा अभिमानी और खोटे पुरुषों के साथ बात चीत को छोड़ता है वही श्रेष्ठ है ॥१२०॥

दानं मोहं दैवतं मङ्गलानि—

प्रायश्चित्तान्विविधांल्लोकवादान् ।
एतानि यः कुरुते नैत्यकानि—
तस्योत्थानं देवताराधयन्ति ॥१२१ ॥

जो दान स्नेह और देवपूजा मङ्गल-(शुभकार्य्य) पापों की शुद्धि और नाना प्रकार की संसारी बात चीत को नित्य करता है उस की उन्नति देवता साधते हैं ॥१२१॥

समैर्विवाहं कुरुते न हीनैः—
समैः सख्यं व्यवहारं कथां च ।
गुणैर्विशिष्टांश्च पुरो दधाति—
विपश्चितस्तस्य नयाः सुनीताः ॥ १२२ ॥

जो बराबर वालों के साथ विवाह मित्रता और बात चीत करता और हीनों के साथ नहीं करता है और गुणों से विशेष पुरुषों को आगे करता है (अर्थात् उन के कहने को मानता है उस पण्डित की नीति अच्छे प्रकार से चलती है ॥१२२॥

मितं भुङ्क्ते संविभज्याश्रितेभ्यो—
मितं स्वपित्यमितं कर्म कृत्वा ।

ददात्यमित्रेष्वपि याचितः सं—
स्तमात्मवन्तं प्रजहत्यनर्थाः ॥१२३॥

अपने आश्रितों को बांटकर के जो प्रमाण से खाता है बहुत कर्म कर के जो प्रमाण से सोता है और शत्रुओं को भी मागने से देता है उस आत्मवान् को अनर्थ छोड़ जाते हैं ॥ १२३ ॥

चिकीर्षितं विप्रकृतं च यस्य—
नान्ये जनाः कर्म जानन्ति किञ्चित् ।
मन्त्रे गुप्ते सम्यगनुष्ठिते च—
नाल्पोप्यस्य च्यवते कश्चिदर्थः ॥१२४॥

जिस के स्वभाव से विचारे हुये कर्म को और मनुष्य नहीं जानते और गुप्त विचार को भी नहीं किन्तु अच्छे प्रकार सिद्ध हुवे कार्य्य को सब जानपाते हैं ऐसे पुरुष का कोई थोड़ासा भी कार्य्य नहीं बिगड़ता ॥ १२४ ॥

यः सर्वभूतप्रशमे निविष्टः—
सत्यो मृदुर्मानकृच्छुद्धभावः ।

अतीव स ज्ञायते ज्ञातिमध्ये—
महामणिर्जात्यइव प्रसन्नः॥ १२५॥

जो सब प्राणियों की शान्ति में घुसता (शामिल होता) है सत्यवादी, मीठा बोलने वाला और योग्यों का मान करने वाला, शुद्ध हृदय वाला, कुटुम्ब के बीच में ऐसा शोभित होता है जैसे उत्तम जाति की महामणि शोभित होती है॥ १२५॥

य आत्मनापत्रपते भृशं नरः स सर्वलोकस्य गुरुर्भवत्युत। अनन्ततेजाःसुमनाः समाहितः स तेजसा सूर्य इवावभासते॥१२६॥

जो मनुष्य अन्तःकरण से पापों से लज्जित होता है वह सब संसार का गुरु होता है वह अनन्त तेजस्वी, प्रसन्न मन, सावधान चित्त वाला, सूर्य तुल्य तेज से प्रकाशित होता है॥ १२६॥

वने जाताः शापदग्धस्य राज्ञः पाण्डोः पुत्राः पञ्च पञ्चेन्द्रकल्पाः। त्वयैव बाला वर्धिताः शिक्षिताश्च तवादेशं पालयन्त्याम्बिकेय! ॥१२७॥

हे धृतराष्ट्र ! शापदग्ध पाण्डु राजा के पांच इन्द्रों के तुल्य पांच पुत्र उत्पन्न हुये तुम्हीं ने उन का पालन पोषण और उन को शिक्षित किया और आप की आज्ञा को वन में पालन कर रहे हैं ॥ १२७ ॥

प्रदायैषामुचितं तात ! राज्यं सुखी पुत्रैः सहितो मोदमानः । न देवानां नापि च मानुषाणां भविष्यसि त्वं तर्कणीयो नरेन्द्र ! ॥१२८॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि प्रजागर पर्वणि विदुरनीतिवाक्ये त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥१॥

हे तात इन को उचित राज्य दीजिये और पुत्रों के साथ प्रसन्न मन हो के रहिये हे राजा देवता और मनुष्यों में तुम्हारी बराबरी करने वाला कोई नहीं होगा ।१२८।

यह श्री महाभारत उद्योग पर्वान्तर्गत प्रजागर पर्व में विदुर नीति वाक्य का ३३ अध्याय समाप्त हुआ ॥१॥

धृतराष्ट्रउवाच

जाग्रतो दह्यमानस्य यत्कार्यमनुपश्यसि ।
तद्ब्रूहि त्वं हि नस्तात ! धर्मार्थकुशलो ह्यसि ।१।

धृतराष्ट्र कहते हैं कि जगते हुये और जलते हुये का जो भला समझते हो हे तात! वह मेरे लिये तुम कहो क्यों कि तुम धर्म और अर्थ में कुशल हो ॥१॥

त्वं मा यथावद्विदुर ! प्रशाधि, प्रज्ञापूर्वं सर्वम जातशत्रोः । यन्मन्यसे पथ्यमदीनसत्व ! श्रेयस्करं ब्रूहि तद्वै कुरूणाम् ॥ २ ॥

हे महाबलवान् विदुरजी! जो युधिष्ठिर का बुद्धिपूर्वक विचार है वह तुम मुझ को सब यथावत् कहो जो हितकारक हो और वह निश्चय कर के कौरवों को कल्याणकारी हो ॥२॥

पापशङ्की पापमेवानुपश्यन् पृच्छामि त्वां व्याकुलेनात्मनाऽहम् । कवे ! तन्मे ब्रूहि सर्वं यथावन्मनीषितं सर्वमजातशत्रोः ॥ ३ ॥

मैं पापों से शङ्का करने वाला पाप को ही देखता

हुआ घबराकर आप को पूंछता हूं हे चतुर विदुर! जो कुछ युधिष्ठिर ने विचार किया वह यथावत् सब मेरे लिये कहो ॥ ३ ॥

विदुर उवाच

शुभं वा यदि वा पापं द्वेष्यं वा यदि वा प्रियम्।
अपृष्टस्तस्य तद्ब्रूयाद्यस्य नेच्छेत्पराभवम्॥४॥

विदुरजी बोले कि मनुष्य जिस की बुराई को नहीं चाहे तो उस के बिना पूंछे भी वह कह दे चाहे शुभ हो वा अशुभ हो चाहे द्वेष्य हो चाहे प्रिय हो ॥४॥

तस्माद्वक्ष्यामि ते राजन्! हितं यत्स्यात् कुरून्प्रति।
वचः श्रेयस्करं धर्म्यं ब्रुवतस्तन्निबोध मे ॥५॥

हे राजा! तिस से तुम्हारे लिये जो कौरवों का हितकारी है वह कहता हूं कल्याणकारी धर्मयुक्त वचन मुझ कहते हुये से जानो ॥५॥

मिथ्योपेतानि कर्माणि सिध्येयुर्यानि भारत
अनुपायप्रयुक्तानि मास्म तेषु मनः कृथाः ।६।

हे धृतराष्ट्र! विना उपाय किये जो कर्म वृथा ही सिद्ध

हो जाते हैं उन में मन को मत लगाओ ॥६॥

तथैव योगविहितं यत्तु कर्म न सिध्यति ।
उपाययुक्तं मेधावी न तत्र ग्लपयेन्मनः ॥७॥

वैसे ही उपाय से किया हुआ जो कर्म सिद्ध नहीं भी हो तो भी उस में उपाययुक्त विद्वान् पुरुष मन को मैला नहीं करे ॥७॥

अनुबन्धानपेक्षेत सानुबन्धेषु कर्मसु ।
सम्प्रधार्य च कुर्वीत न वेगेन समाचरेत् ॥८॥

परिणामयुक्त (जिन में नतीजा निकले) कार्यों में परिणाम की अपेक्षा करे और अच्छे प्रकार सोचकर करे जल्दी न करे ॥८॥

अनुबन्धं च सम्प्रेक्ष्य विपाकं चैव कर्मणाम् ।
उत्थानमात्मनश्चैव धीरः कुर्वीत वा नवा ॥९॥

परिणाम को तथा और कर्मों के फल को और मन की उमङ्ग को देखकर धीर पुरुष करे नहीं तो न करे ॥९॥

यः प्रमाणं न जानाति स्थाने वृद्धौ तथा क्षये ।
कोशे जनपदे दण्डे न स राज्येवऽतिष्ठते ॥१०॥

जो स्थान, वृद्धि तथा व्यय, कोष, राज्य और दण्ड (सजा) के प्रमाण को नहीं जानता वह राज्य करने योग्य नहीं है ।१०।

यस्त्वेतानि प्रमाणानि यथोक्तान्यनुपश्यति ।
युक्तो धर्मार्थयोर्ज्ञाने स राज्यमधिगच्छति ॥११॥

और जो ठीक २ इन प्रमाणों को जानता है और धर्म अर्थ के ज्ञान से युक्त होता है वह राज्य को प्राप्त होता है ११

न राज्यं प्राप्तमित्येव वर्तितव्यमसाम्प्रतम् ।
श्रियं ह्यविनयो हन्ति जरा रूपमिवोत्तमम् १२

मैं राज्य को प्राप्त हुआ इतने ही से अनुचित वर्त्ताव नहीं करना चाहिये क्योंकि अविनय (नम्रता न होना) लक्ष्मी (धन) का नाश करता है जैसे बुढ़ापा सुन्दर रूप का ।१२।

भक्ष्योत्तमप्रतिच्छन्नं मत्स्यो बडिशमायसम् ।
लोभाभिपाती ग्रसते नानुबन्धमवेक्षते ॥१३॥

उत्तम भोजन से छिपे हुवे लोहे के कांटे को लोभ पर गिरती हुई मछली खाजाती है और परिणाम को नहीं देखती (अर्थात् लोभी मनुष्य शुभाशुभ फल को न देख कर कर्मों का आरम्भ कर देता है) ॥ १३ ॥

यच्छक्यं ग्रसितुं ग्रस्यं ग्रस्तं परिणमेच्च यत् ।
हितं च परिणामेयत्तदाद्यं भूतिमिच्छता ॥१४॥

उन्नति चाहने वाले पुरुष को जो खाने योग्य हो वह खाना चाहिये और खाया हुआ भी जो हज़म हो जावे और हज़म हो करके हितकारी हो वह भोजन खाना चाहिये ॥१४॥

वनस्पतेरपक्वानि फलानि प्रचिनोति यः ।
सनाप्नोतिरसं तेभ्यो बीजं चास्य विनश्यति ॥१५॥

वनस्पति से जो कच्चे फलों को इकट्ठा करता है वह उन के रस को नहीं पाता और उस का बीज भी नष्ट होता है ॥ १५ ॥

यस्तुपक्वमुपादत्ते काले परिणतं फलम् ।
फलाद्रसं स लभते बीजाच्चैव फलं पुनः ॥१६॥

जो समय पर पके हुवे फलों को लेता है वह फलों से रस को पाता है और बीज से फिर फलों को पाता है (कच्चे फलों का बीज भी नहीं उगता और पक्के फलों का बीज भी उगकर फिर फल पैदा करता है) ॥१६॥

यथा मधु समादत्ते रक्षन् पुष्पाणि षट्पदः ।

तद्वदर्थान्मनुष्येभ्य आदद्यादविहिंसया ॥१७॥

जिस प्रकार भौंरा फूलों की रक्षा करता हुआ रसको लेलेता है तिसी प्रकार विना हिंसा (दुःखदिये) मनुष्यों से अर्थों को लेलेवे ॥ १७ ॥

पुष्पं पुष्पं विचिन्वीत मूलच्छेदं न कारयेत् ।
मालाकार इवारामे न यथाङ्गारकारकः ॥१८॥

फूल २ बीन ले जड़ नाश नहीं करे जिस प्रकार माली बाग़ को, कमंगर की तरह नहीं (अतिशयाज़ी करा कर सब जला देता है ऐसे नहीं, मनुष्य को चाहिये अपना मतलब निकाल ले पर मूलच्छेद नहीं करे) ॥१८॥

किन्नु मे स्यादिदंकृत्वा किन्नु मे स्यादकुर्वतः ।
इति कर्माणि सञ्चिन्त्य कुर्याद्वा पुरुषो न वा १९

"मेरा इस करने से क्या होगा और इस के न करने से क्या होगा" मनुष्य इस प्रकार कार्यों को विचार कर करे वा न करे ॥ १९ ॥

अनारम्भा भवन्त्यर्थाः केषिन्नित्यं तथाऽऽगताः ।
कृतः पुरुषकारो हि भवेद्येषु निरर्थकः ॥२०॥

वैसे ही कोई नित्य आये हुवे अर्थ (कार्य) भी आरम्भ करने योग्य नहीं होते (बलवानों के साथ लड़ाई आदि करना वृथा है अपना ही नुकसान है) क्योंकि उन में किया हुआ पुरुषार्थ व्यर्थ होता है ॥ २० ॥

प्रसादो निष्फलो यस्य क्रोधश्चापि निरर्थकः ।
न तं भर्तारमिच्छन्ति षण्ढं पतिमिव स्त्रियः ।२१।

जिस का क्रोध व प्रसन्नता निष्फल है उस राजा को प्रजा स्वामी मानना नहीं चाहती जिस प्रकार नपुंसक पुरुष को स्त्रियां ॥२१॥

कांक्षिदर्थान्नरः प्राज्ञो लघुमूलान्महाफलान् ॥
क्षिप्रमारभते कर्तुं न विघ्नयति तादृशान् ॥२२॥

बुद्धिमान् मनुष्य किन्हीं थोड़े जड़वाले और अधिक फल वाले अर्थों का जल्दी करना आरम्भ करता है और वैसे कार्यों का विघ्न नहीं करता ॥ २२ ॥

ऋजु पश्यति यः सर्वं चक्षुषानुपिबन्निव ।
आस्तेनमपि तूष्णीकमनुरज्यन्ति तं प्रजाः ।२३।

और आखों से पीते हुवे के तुल्य (अर्थात् प्यार दृष्टि से) सब को कोमलता से देखता है ऐसे चुप बैठेहुवे भी राजा

को प्रजा, राजा मानती है ॥ २३ ॥

सुपुष्पितः स्यादफलः फलितः स्यादुरारुहः ।
अपक्वः पक्वसङ्काशो न तुशीर्येत कर्हिचित् ॥२४॥

अच्छा फूला हुआ हो पर फल रहित हो, फला हुआ हो पर मुशकिल से चढ़ने योग्य हो, कच्चा हो पर पक्का सा मालूम दे परन्तु कभी टपके नहीं (मनुष्यों में कोई२ राजादि इसी प्रकार के वृक्ष से होते हैं, जिन से किसी का उपकार नहीं होता) ॥ २४ ॥

चक्षुषा मनसा वाचा कर्मणा च चतुर्विधम् ।
प्रसादयति यो लोकं तं लोकोऽनुप्रसीदति ॥२५॥

नेत्र मन वाणी और कर्म इन चार प्रकारों से जो संसार को प्रसन्न करता है तो संसार उस को प्रसन्न करता है ।२५।

यस्मात्त्रस्यन्ति भूतानि मृगव्याधान्मृगा इव ॥
सागरान्तामपि महीं लब्ध्वा स परिहीयते॥२६॥

जिस प्रकार से हिरण अपने मारने वाले से डरते हैं उसी प्रकार जिस से प्राणी दुःख पाते हैं वह सागर के अन्त तक पृथ्वी को पाकर भी नष्ट हो जाता है ॥ २६ ॥

पितृपैतामहं राज्यं प्राप्तवान् स्वेन कर्मणा।
वायुरभ्रमिवासाद्य भ्रंशयत्यनये स्थितः॥ २७॥

अनीति करने वाला पुरुष अपने पूर्व कर्मों से पिता दादा आदि के राज्य को पाकर ऐसे नष्ट कर देता है जिस प्रकार वायु बादल को प्राप्त होकर [नष्ट कर देता है] ॥२७॥

धर्ममाचरतो राज्ञः सद्भिश्चरितमादितः।
वसुधा वसुसम्पूर्णा वर्धते भूतिवर्द्धनी॥२८॥

जिस का आदि से सत्पुरुषों ने आचरण किया ऐसे धर्म के आचरण करने वाले राजा की उन्नति को बढ़ाने वाली पृथ्वी (राज्य) धनादिक से पूर्ण हुई बढ़ती है॥२८॥

अथ संत्यजतो धर्ममधर्मं चानुतिष्ठतः।
प्रतिसंवेष्टते भूमिरग्नौ चर्माहितं यथा॥२९॥

जो राजा धर्म को छोड़ कर अधर्म का सेवन करता है उस की पृथ्वी (राज्य) संकुचित होती (अर्थात् बड़े फल नहीं देती) जैसे अग्नि में डाला हुवा चर्म॥ २९॥

य एव यत्नः क्रियते परराष्ट्रविमर्दने॥
स एव यत्नः कर्तव्यः स्वराष्ट्रपरिपालने॥३०॥

जो यत्न (कोशिश) शत्रु के राज्य नष्ट करने में किया जाता है वही अपने राज्यके पालन में करना चाहिये।३०।

धर्मेण राज्यं विन्देत धर्मेण परिपालयेत्।
धर्ममूलां श्रियं प्राप्य न जहाति न हीयते ॥३१॥

धर्म से राज्य को प्राप्त होवे और धर्म ही से राज्य का पालन करे और धर्म है जड़ जिस की ऐसी लक्ष्मी को प्राप्त होकर न वह लक्ष्मी को छोड़ता है, न लक्ष्मी उस को।३१।

अप्युन्मत्तात्प्रलपतो बालाच्च परिजल्पतः ॥
सर्वतः सारमादद्यादश्मभ्य इव काञ्चनम् ॥३२॥

जिस प्रकार पत्थरों से सोना लिया जाता है वैसे ही उन्मत्त से बकवादी से बालक और गाली देने वाले इन सब से सार (तत्व) को ले लेवे ॥ ३२ ॥

सुव्याहृतानि सूक्तानि सुकृतानि ततस्ततः।
सञ्चिन्वन् धीर आसीत शिलाहारी शिलं यथा।३३।

धीर पुरुष अच्छे मधुर वचन तथा अच्छे २ कर्म्मों को जहां तहां से इकट्ठा करने वाला होवे जैसे शिलाहारी शिल (खेतों में गिरे हुवे अन्न) को बीनते हैं ॥ ३३ ॥

गन्धेन गावः पश्यन्ति वेदैः पश्यन्ति ब्राह्मणाः।

चारैः पश्यन्ति राजानश्चक्षुर्भ्यामितरे जनाः॥३४॥

गन्ध (महक) से गौयें देखती हैं और ब्राह्मण वेदों से गुप्त दूतों से राजा और अन्य लोग नेत्रों से देखते हैं ॥३४॥

भूयांसं लभते क्लेशं या गौर्भवति दुर्दुहा ॥
अथ या सुदुहा राजन्नैव तां वितुदन्त्यपि ॥३५॥

कठिनाई से दुहाने वाली जो गौ होती है वह बड़े क्लेश पाती है और हे राजा ! जो अच्छे प्रकार दुहाने वाली है उस को कोई छेड़ता भी नहीं ॥ ३५ ॥

यदतप्तं प्रणमति न तत्सन्तापयन्त्यपि ॥
यश्च स्वयं नतं दारु न तत्सन्नमयन्त्यपि ॥३६॥

जो लकड़ी बिना तपाये (जलाये) टेढ़ी लच सकती हो उस को कोई नहीं तपाता और जो स्वयं लची होती है उस को कोई लचाता भी नहीं ॥ ३६ ॥

एतयोपमया धीरः सन्नमेत बलीयसे ॥
इन्द्राय स प्रणमते नमते यो बलीयसे ॥३७॥

इसी उपमा (मिसाल) से धीर पुरुष बलवान् से नमे (नम्र) होवे । जो बलवान् के लिये नमता है वह मानो इन्द्र के लिये नमता है ॥ ३७ ॥

पर्जन्यनाथाः पशवो राजानो मन्त्रिबान्धवाः ॥
पतयो बान्धवाः स्त्रीणांब्राह्मणा वेदबान्धवाः।३८।

पशुओं के स्वामी बादल (यानी बरसने से घासादि पैदा होते और वह खाते हैं) और राजाओं के मन्त्री सहायक हैं और स्त्रियों के पति बन्धु हैं और ब्राह्मणों के वेद बन्धु हैं।३८।

सत्येन रक्ष्यते धर्मो विद्या योगेन रक्ष्यते ॥
मृजया रक्ष्यते रूपं कुलं वृत्तेन रक्ष्यते ॥३९॥

सत्य से धर्म की, योगाभ्यास से विद्या की, मार्जन (उबटनादि) से रूप की और आचरणों से कुल की रक्षा होती है ॥ ३९ ॥

मानेन रक्ष्यते धान्यमश्वान् रक्षत्यनुक्रमः ॥
अभीक्ष्णदर्शनं गाश्च स्त्रियो रक्ष्याः कुचैलतः ४०

अन्नादि की प्रमाण (तौल नापादि) से और घोड़ों को टहलाने से (एक जगह बंधे रहने से घोड़े उन्मत्त हो जाते हैं), रोज़ देखने से गौ की और वेष बनाने वाले वस्त्रादिकों से स्त्री की रक्षा करे (वैसे कपड़े पहनने से शौकीन होकर कुमार्गगामिनी होना सम्भव है) ॥ ४० ॥

न कुलं वृत्तहीनस्य प्रमाणमिति मे मतिः ।
अन्त्येष्वपि हि जातानां वृत्तमेव विशिष्यते ।४१।

कुल के विशिष्ट होने से भी आचरणहीन मनुष्य प्रामाणिक नहीं परन्तु अतिशूद्रों में भी पैदा हुवा पुरुष आचरणों से ही विशेष है ॥ ४१ ॥

यईर्षुः परवित्तेषु रूपे वीर्ये कुलान्वये ।
सुखसौभाग्यसत्कारे तस्य व्याधिरनन्तकः ।४२।

जो दूसरे के धनों में रूप में बल में कुटुम्ब परिवार में सौभाग्य में आदर में ईर्ष्या करता है उस को महाव्याधि (रोग) समझना चाहिये ॥ ४२ ॥

अकार्यकरणाद्भीतः कार्याणां च विवर्जनात् ।
अकाले मन्त्रभेदाच्च येन माद्येन्न तत्पिबेत् ।४३।

जो न करने योग्य के करने, करने योग्यों के छूटने और बेसमय विचार के खुल जाने से डरता है वह कभी नशा न पीवे (अर्थात् नशा के पीने से बेहोश होकर अकार्य्यों को करेगा और कार्य्यों को छोड़ेगा और अपने गुप्त रखने योग्य विचार को कह देगा इस से हानि होगी) ।४३।

विद्यामदो धनमदस्तृतीयोऽभिजनो मदः ।

मदा एतेऽवलिप्तानामेत एव सता दमाः ।४४।

विद्या का मद, धन का मद, कुटुम्ब का मद, यह तीनो नीचों के लिये मद हैं और श्रेष्ठों के यह तीनों दम हैं (इन तीनों के होने से सज्जन लाभ उठाते, दुर्जन दुःख पाते हैं ॥ ४४ ॥

असतोऽभ्यर्थिताः सद्भिः क्वचित्कार्ये कदाचन ।
मन्यन्ते सन्तमात्मनमऽसन्तमपि विश्रुतम् ४५

ऐसा विशेष सुना जाता है कि किसी कार्य्य में कभी कोई सज्जन किसी दुर्ज्जन की प्रार्थना करें तो वह दुर्ज्जन अपने को सज्जन मानने लगता है (क्योंकि सज्जन हमारी प्रार्थना करते हैं यह समझ कर) ॥४५॥

गतिरात्मवतां सन्तः सन्त एव सतां गतिः ।
असतां च गतिःसन्तो नत्वसन्तःसतां गतिः।४६।

आत्मवानों की सन्त गति हैं और सज्जन ही सज्जनों की गति हैं और दुर्ज्जनों की भी गति सन्त हैं परन्तु दुर्ज्जन, सज्जनों की गति नहीं होते (गति=उपकारक) ॥४६॥

जिता सभा वस्त्रवता मिष्टाशा गोमता जिता ।
अध्वा जितो यानवता सर्वं शीलवता जितम्४७

वस्त्रों वाला सभा को जीतता है (इस वस्त्र के जेन्टिलमैनों पर खूब घटता है) गौ वाला (दुग्धादि से) मीठे को जीत लेता है, सवारी वाला रास्ता को जीत लेता और शील वाला पुरुष सब को जीत लेता है ॥४७॥

शीलं प्रधानं पुरुषे तद्यस्येह प्रणश्यति ।
न तस्य जीवितेनार्थो न धनेनन बन्धुभिः।४८।

पुरुषों में शील मुख्य है, जिस पुरुष का यह नष्ट हो जाता है उस के जीने तथा धन और कुटुम्बादि से क्या प्रयोजन(अर्थात् शील के विना सब निष्प्रयोजन हैं) ॥४८

आढ्यानां मांसपरमं मध्यानां गोरसोत्तरम्।
तैलोत्तरं दरिद्राणां भोजनं भरतर्षभ ! ॥४९॥

हे धृतराष्ट्र! धनवानों का मांस वाला भोजन होता है मध्यम दर्जे वालों का घृतादिकों से युक्त होता है और दरिद्रियों का तैल युक्त भोजन होता है (यहां कोई महाशय यह न समझें कि मांस खाने की विधि है यह नहीं किन्तु यह अक्सर होता है कि मांस भक्षण धनाढ्य बहुतेरे करते हैं जैसे कोई कहे कि "चोरों का काम है चोरी करना" तो यह क्या उन का काम है? नहीं क्योंकि मनुष्य

मात्र का काम है कि धर्मानुकूल वर्त्ते दश आदमी अधर्म वर्त्ते तो क्या अधर्म वर्त्तना भी कोई कर्त्तव्य है? नहीं) ४९

सम्पन्नतरमेवान्नं दरिद्रा भुञ्जते सदा ।
क्षुत्स्वादुतां जनयति सा चाढ्येषु सुदुर्लभा ।५०।

दरिद्री चाहे जैसा अन्न हो वह स्वादु करके खाते हैं भूख ही स्वादुपन को पैदा करती है (दरिद्रियों को चाहे जैसा मिले उन को स्वादु ही भूख के कारण लगता है) और वह क्षुधा धनाढ्यों में होनी कठिन है ॥५०॥

प्रायेण श्रीमतां लोके भोक्तुं शक्तिर्न विद्यते ॥
जीर्यन्त्यपि हि काष्ठानि दरिद्राणां महीपते ।५१।

हे राजा! संसार में प्रायः श्रीमानों (धनाढ्यों) क खाने की शक्ति (ताकत) नहीं होती है (क्योंकि दिन भर बैठे रहने से खाना हज़म नहीं होता, श्रम से होता है) परन्तु दरिद्रों को काष्ठ भी हज़म हो जाता है ॥५१॥

अवृत्तिभयमन्त्यानां मध्यानां मरणाद्भयम् ।
उत्तमानां तु मर्त्यानामवमानात्परम्भयम् ।५२।

नीचों को अपनी जीविका और मध्यमों को मृत्यु और उत्तम पुरुषों को अपमान से बड़ा भारी भय होता है ।५२।

ऐश्वर्यमदपापिष्ठा मदाः पानमदादयः ॥
ऐश्वर्यमदमत्तो हि नापतित्वा विबुध्यते ॥५३॥

मदिरा (शराब) आदि के नशों से ऐश्वर्यरूप मद (नशा) अत्यन्त पापी (भारी) है। क्योंकि ऐश्वर्यरूप मद से मतवाला हुआ बिना गिरे होश में नहीं आता ॥५३॥

इन्द्रियैरिन्द्रियार्थेषु वर्तमानैरनिग्रहैः ॥
तैरयं ताप्यते लोको नक्षत्राणि ग्रहैरिव ॥५४॥

इन्द्रियों के भोगों में बिना वश किये हुवे इन्द्रियों से वर्त्तमान यह संसार उन इन्द्रियों से तप्त (दुःखित) किया जाता है जैसे ग्रहों से तारागण (तारागण के साथ दुःखित नहीं किन्तु ग्रह गर्मी पहुंचाते हैं यह अर्थ लिया जायगा) ॥ ५४॥

योजितः पञ्चवर्गेण सहजेनात्मकर्षिणा ॥
आपदस्तस्य वर्धन्ते शुक्लपक्ष इवोडुराट् ।५५।

साथ उत्पन्न होने वाले और मन खींचने वाले पञ्चवर्ग (काम क्रोध मोह लोभ अहंकार) से जो वश में होता है उस की विपत्तियां बढ़ती हैं जैसे शुक्लपक्ष का चन्द्रमा ।५५।

अविजित्य यथात्मानममात्यान् विजिगीषते ।

अमित्रान्वाऽजितामात्यःसोवशःपरिहीयते।५६।

जो राजा मन को न जीत कर मन्त्री आदि को जीतना चाहता है और मन्त्रियों को न जीत कर शत्रुओं को जीतना चाहता है वह अवश होकर नष्ट होजाता है।५६।

आत्मानमेव प्रथमं द्वेष्यरूपेण यो जयेत् ॥
ततोऽमात्यानमित्रांश्च नमोघंविजिगीषते।५७।

जो प्रथम शत्रुरूप (अर्थात् जिस प्रकार शत्रु को जीता जाता है) से मन को जीते बाद मन्त्रियों और शत्रुओं को जीतना चाहे यह निष्फल नहीं (अर्थात् सफल है)।५७

वश्येन्द्रियं जितात्मानं धृतदण्डं विकारिषु ।
परीक्ष्य कारिणं धीरमत्यन्तं श्रीर्निषेवते ॥५८॥

इन्द्रियों को वश में करने वाले, मन को जीतने वाले, अपराधी को दण्डदेने वाले, परीक्षा करने वाले, तथा धैर्य्यवान्, को लक्ष्मी अत्यन्त सेवन करती है (रहती है)

रथः शरीरं पुरुषस्य राजन्नात्मा नियन्तेन्द्रियाण्यस्य चाश्वाः । तैरप्रमत्तः कुशली सदश्वैर्दान्तैः सुखं याति रथीव धीरः ॥५९॥

हे राजा ! पुरुष का शरीर रथ है और आत्मा नियन्ता (ले चलने वाला) और इस की इन्द्रियां घोड़े के तुल्य हैं उन से सावधान हुआ चतुर धीर पुरुष अच्छे दमन किये घोड़ों से रथ में बैठने वाले के तुल्य सुख पूर्वक जाता है ॥५९॥

एतान्यनिगृहीतानि व्यापादयितुमप्यलम् ।
अविधेया इवादान्ता हयाःपथि कुसारथिम् ।६०।

ये विना दमन किये हुये इन्द्रिय मारने को भी समर्थ हैं जैसे विना दमन किये हुये घोड़े बुरे सारथि (हाकने वाले) को । (अर्थात् इधर उधर यान को डालते हैं) ॥६०॥

अनर्थमर्थतः पश्यन्नर्थं चैवाप्यनर्थतः ।
इन्द्रियैरजितैर्बालःसुदुःखं मन्यते सुखम् ।६१।

विना जीते इन्द्रियों से मूर्ख पुरुष दुःख को सुख मानता है अनर्थ को अर्थ से और अर्थ को अनर्थ से देखता है ॥६१॥

धर्मार्थौ यः परित्यज्य स्यादिन्द्रियवशानुगः ।
श्रीप्राणधनदारेभ्यः क्षिप्रं स परिहीयते ॥६२॥

धर्म और अर्थ को छोड़ कर इन्द्रियों के वश हो उनके पीछे चलने वाला, लक्ष्मी प्राण धन और स्त्री से जल्दी अलग हो जाता है ॥ ६२ ॥

अर्थानामीश्वरो यः स्यादिन्द्रियाणामनीश्वरः ।
इन्द्रियाणामनैश्वर्यादैश्वर्याद्भ्रश्यते हि सः ।६३।

जो धनादिक का स्वामी हो पर इन्द्रियों का स्वामी नहीं हो तो इन्द्रियों के स्वामी न होने से वह धनादिक ऐश्वर्य्य से गिर जाता है (अलग होजाता है) ॥ ६३ ॥

आत्मनात्मानमन्विच्छेन्मनो बुद्धीन्द्रियैर्यतैः ।
आत्मा ह्येवात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः।६४।

वश किये हुये मन बुद्धि और इन्द्रियों से अपने आपे को जीते, क्योंकि आत्मा ही आत्मा का बन्धु है और आत्मा ही आत्मा का शत्रु है ॥ ६४ ॥

बन्धुरात्मात्मनस्तस्य येनेवात्मात्मना जितः ॥
स एव नियतो बन्धुः स एव नियतो रिपुः।६५।

जिस जीवात्मा ने मन को जीत लिया उस जीवात्मा का मन ही बन्धु है क्योंकि वही मन आत्मा का निश्चय बन्धु है और वही निश्चय शत्रु है ॥ ६५ ॥

क्षुद्राक्षेणेव जालेन झषावपिहितावुरू ।
कामश्च राजन्! क्रोधश्च तौ प्रज्ञानं विलुम्पतः६६

छोटे २ छिद्र (सूराखों) वाले जाल में दो बड़ी २ मछली छपी हैं हेराजा वे दोनों काम क्रोध हैं जो ज्ञान रूप जाल को तोड़ डालती हैं ॥ ६६ ॥

समवेक्ष्येह धर्मार्थौ सम्भारान् योऽधिगच्छति ।
स वै संभृतसम्भारः सततं सुखमेधते ॥ ६७ ॥

जो धर्म और अर्थ को विचार कर भार को लेता है वह भार का उठानेवाला सुख को प्राप्त होकर बढ़ता है ६७

यः पञ्चाभ्यन्तरान् शत्रूनविजित्य मनोमयान् ।
जिगीषति रिपूनन्यान् रिपवोऽभिभवन्ति तम् ६८

जो मानस भीतरे के पांच (काम क्रोधादि वा इन्द्रिय) शत्रुओं को न जीतकर अन्य शत्रुओं को जीतना चाहता है उस को शत्रु दबालेते हैं ॥६८॥

दृश्यन्ते हि महात्मानो बध्यमानाः स्वकर्मभिः ।
इन्द्रियाणामनीशत्वाद्राजानो राज्यविभ्रमैः ।६९।

अपने कर्मों से महात्मा (बड़े २ मनुष्य) भी अंधे दीखते हैं इन्द्रियों के स्वामी न होने (वश में न करने) से, जैसे राजा के मन्त्री आदि वश में न होने से राज्य को चक्कर

में डाल देते हैं ॥६९॥

असन्त्यागात् पापकृतामपापां—
स्तुल्यो दण्डः स्पृशते मिश्रभावात् ।
शुष्केणार्द्रं दह्यते मिश्रभावा—
त्तस्मात्पापैः सह सन्धिं न कुर्यात् ॥७०॥

निष्पापियों को भी पापियों का संग न छोड़ने से बराबर मेल होने से दण्ड होता है जैसे सूखी लकड़ियों के साथ गीली जल जाती हैं। इस लिये पापी मनुष्यों से मेल न करे ॥७०॥

निजानुत्पततः शत्रून्पञ्च पञ्चप्रयोजनान् ।
यो मोहान्न निगृह्णाति तमापद्ग्रसते नरम् ॥७१॥

जो चढ़े आते हुवे पांच इन्द्रिय पांच प्रयोजन वाले अपने शत्रुओं को अज्ञान वश नहीं दबाता उस मनुष्य को आपत्ति घेर लेती है (खा लेती हैं) ॥ ७१ ॥

अनसूयार्जवं शौचं सन्तोषः प्रियवादिता ।
दमः सत्यमनायासो न भवन्ति दुरात्मनाम् ७२

चुगली न करें, कोमल हो, पवित्र, सन्तोषी, प्रिय बो-

लने वाले, मन को रोकने वाले, सत्यवादी हों, थके नहीं, दुरात्मा अर्थात् खोटे पुरुषों के यह नहीं होते हैं ॥७२॥

आत्मज्ञानमनायासंस्तितिक्षा धर्मनित्यता ।
वाक्चैव गुप्ता दानं च नैतान्यन्त्येषु भारत ! ।७३।

हे भारत ! आत्मा का ज्ञान, थकावट न होना, सहन शीलता, नित्य धर्म होना, वाणी का रक्षित रखना और दान यह नीचों में नहीं होते ॥७३॥

आक्रोशपरिवादाभ्यां विहिंसन्त्यबुधा बुधान् ।
वक्ता पापमुपादत्ते क्षममाणो विमुच्यते ॥७४॥

मूर्ख, बुद्धिमानों को गाली और निन्दा से दुःखित करते हैं, कहने वाला पाप को अपने ऊपर लेलेता है और क्षमा करने वाला छूटजाता है ॥७४॥

हिंसा बलमसाधूनां राज्ञां दण्डविधिर्बलम् ।
शुश्रूषा तु बलं स्त्रीणां क्षमा गुणवतां बलम् ।७५।

दुष्ट पुरुषों का दुःख देना बल है, राजाओं को दण्ड देने का बल है, स्त्रियों का बल शुश्रूषा है, गुणीपुरुषों का बल क्षमा है ॥७५॥

वाक्संयमो हि नृपते ! सुदुष्करतमो मतः ।
अर्थवच्च विचित्रं च न शक्यं बहु भाषितुम् ।७६।

हेराजा ! वाणी का रोकना ही अति कठिन माना गया है। अर्थ वाला और विचित्र (अनोखा) बहुत नहीं कहा जा सकता (बहुत कथन या तो अर्थ या विचित्रता से रहित होजाता है) ॥ ७६ ॥

अभ्यावहति कल्याणं विविधं वाक् सुभाषिता ।
सैव दुर्भाषिता राजन्ननर्थायोपपद्यते ॥ ७७ ॥

अच्छी कही हुई वाणी नाना प्रकार के कल्याणों को देती है । हे राजा ! वही बुरी कही हुई अनर्थों को उत्पन्न करती है ॥ ७७ ॥

रोहते सायकैर्विद्धं वनं परशुना हतम् ।
वाचा दुरुक्तं बीभत्सं न संरोहति वाक्क्षतम् ७८

बाणों से छेदा हुआ और कुल्हाड़े से काटा हुआ वन फिर हरा होजाता है परन्तु कटु बोला हुआ वचन भयङ्कर होता है और वाणी का घाव (ज़ख्म) फिर नहीं भरता ॥७८॥

कर्णिनालिकनाराचान्निर्हरन्ति शरीरतः ।
वाक्शल्यस्तु न निर्हर्तुं शक्यो हृदिशयो हि सः७९

कर्णी, नालिक, नाराचादि (बाणों के नाम) बाण यदि शरीर में लगें तो अलग निकाल कर फेंक दिये जा सकते हैं परन्तु हृदय में चुभने वाले वाणी रूप बाण को पुरुष नहीं निकाल सकता ॥ ७९ ॥

वाक्सायकावदनान्निष्पतन्ति, यैराहतः—
शोचति रात्र्यहानि । परस्य नामर्मसु
ते पतन्ति, तान्पण्डितो नावसृजेत्परेभ्यः॥८०॥

वाणी रूप बाण मुख से निकलते हैं जिन बाणों से मारा हुआ पुरुष रात्रि दिन शोचता है वे बाण दूसरे के मर्मस्थलों में लगते हैं इसलिये पण्डित (बुद्धिमान्) दूसरों के लिये (ये बाण) नहीं निकाले ॥ ८० ॥

यस्मै देवाः प्रयच्छन्ति पुरुषाय पराभवम् ।
बुद्धिं तस्यापकर्षन्ति सोऽर्वाचीनानि पश्यति ८१

देवता जिस के पराभव (हार) को चाहते हैं उस की बुद्धि को खींच लेते हैं और वह उल्टा ही देखता है।८१।

बुद्धौ कलुषभूतायां विनाशे प्रत्युपस्थिते ।
अनयो नयसङ्काशोहृदयान्नापसर्पति ॥ ८२॥

बुद्धि के मलिन होने पर और विनाश के उपस्थित होने पर अनीति नीति सी मालूम होती है और वह हृदय से नहीं निकलती ॥ ८२ ॥

सेयं बुद्धिः परीता ते पुत्राणां भरतर्षभ ! ।
पाण्डवानां विरोधेन न चैनानवबुध्यसे ॥ ८३ ॥

हे भरतर्षभ (धृतराष्ट्र !) वह बुद्धि तुम्हारे पुत्रों में पूर्ण हो गई पाण्डवों के विरोध से और तुम इन को नहीं जानते ।८३।

राजा लक्षणसम्पन्नस्त्रैलोक्यस्यापि यो भवेत् ।
शिष्यस्ते शासितासोऽस्तु धृतराष्ट्र! युधिष्ठिरः।८४।

हे धृतराष्ट्र ! युधिष्ठिर राजाओं के लक्षणों से युक्त जो तीनों लोकों का भी स्वामी हो सकता है और तुम्हारा शिक्षा करने योग्य है वह राजा होना चाहिये ॥ ८४॥

अतीव सर्वान्पुत्रांस्ते भागधेयपुरस्कृतः ।
तेजसा प्रज्ञया चैव युक्तो धर्मार्थतत्त्ववित्॥८५॥

धर्म और अर्थ के मूल को जाननेहारा युधिष्ठिर अत्यन्त तेज और बुद्धि से युक्त आप के सब पुत्रों में भाग देने योग्य है ॥ ८५ ॥

अनुक्रोशादानृशंस्याद्योऽसौ धर्मभृतां वरः ।
गौरवात्तव राजेन्द्र ! बहून्क्लेशांस्तितिक्षति ।८६।

दयालु और हिंसक न होने से यह जो धर्मात्माओं में श्रेष्ठ (युधिष्ठिर) है, हे राजा ! तुम्हारे बड़प्पन को देखकर बहुत दुःखों को सहता है ॥ ८६ ॥

इति श्रीमहाभारतेउद्योगपर्वणि विदुरनीतिवाक्ये त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥३३॥ प्रजागरपर्वणि च द्वितीयः ॥२॥

यह महाभारत प्रजागर पर्व उद्योगपर्वान्तर्गत विदुरनीति का ३३ वां अध्याय हुवा ॥

धृतराष्ट्रउवाच

ब्रूहि भूयो महाबुद्धे ! धर्मार्थसहितं वचः ।
शृण्वतो नास्ति मे तृप्तिर्विचित्राणीह भाषसे ॥१॥

धृतराष्ट्र कहते हैं—हे महाबुद्धिमान् ! धर्म और अर्थ सहित वचन फिर कहो, इस विषय में विचित्र (अनोखा) कहते हो इसलिये सुनते हुये मुझे तृप्ति नहीं है ॥ १ ॥

विदुरउवाच

सर्वतीर्थेषु वा स्नानं सर्वभूतेषु चार्जवम् ।
उभे त्वेते समे स्यातामार्जवं वा विशिष्यते॥२॥

विदुर जी कहते हैं—सब तीर्थों में स्नान करना और सब प्राणियों में कोमलता का वर्त्ताव इन दोनों की बराबरी करने पर कोमलता ही विशेष है ॥ २ ॥

आर्जवं प्रतिपद्यस्व पुत्रेषु सततं विभो ! ।
इह कीर्तिं परां प्राप्य प्रेत्य स्वर्गमवाप्स्यसि॥३॥

इसलिये हे ऐश्वर्य्यवान् (धृतराष्ट्र !) सदा पुत्रों में कोमलता को धारण करो जो क्योंकि कोमलता से इस लोक में महाकीर्त्ति को प्राप्त होकर मरकर स्वर्ग भी पावोगे ।३।

यावत्कीर्त्तिर्मनुष्यस्य पुण्या लोके प्रगीयते ।
तावत्स पुरुषव्याघ्र ! स्वर्गलोके महीयते ॥४॥

हे पुरुष व्याघ्र ! जब तक मनुष्य की पवित्र कीर्त्ति पृथ्वी लोक पर गाई जाती है तब तक ही स्वर्ग में महिमा को पाता है ॥ ४ ॥

अत्राप्युदाहरन्तोममितिहासं पुरातनम् ।

विरोचनस्य संवादं केशिन्यर्थे सुधन्वना ॥५॥

इस विषय में इस पुराने इतिहास को (मनुष्य) कहते हैं जो कि केशिनी के लिये विरोचन का सुधन्वा के साथ संवाद है ॥ ५॥

स्वयंवरे स्थिता कन्या केशिनी नाम नामतः ।
रूपेणाप्रतिमा राजन्! विशिष्टपतिकाम्यया ॥६॥

हे राजा! रूप से अद्वितीय विशेष (श्रेष्ठ) पति की इच्छा युक्त केशिनी नाम वाली कन्या स्वयंवर में स्थित हुई ॥६॥

विरोचनोऽथ दैतेयस्तदा तत्राजगाम ह ।
प्राप्तुमिच्छंस्ततस्तत्र दैत्येन्द्रं प्राह केशिनी॥७॥

तब दैत्य का पुत्र विरोचन (केशिनी के) लेने की इच्छा से वहां आया वहां तब विरोचन से केशिनी बोली ॥ ७॥

केशिन्युवाच ।

किं ब्राह्मणाः स्विच्छ्रेयांसो दितिजाः स्विद्विरोचन ! । अथ केन स्म पर्यङ्कं सुधन्वा नाधिरोहति ॥८॥

केशिनी कहती है—हे विरोचन क्या ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं या दैत्य श्रेष्ठ हैं ? किस कारण से सुधन्वा पलंग पर नहीं बैठते ॥ ८ ॥

विरोचन उवाच ।

प्राजापत्यास्तु वै श्रेष्ठा वयं केशिनि ! सत्तमाः ।
अस्माकं खल्विमे लोकाः केदेवाः केद्विजातयः ॥९॥

हे केशिनी ! प्रजापति के पुत्र श्रेष्ठ हैं इसलिये हम अत्यन्त श्रेष्ठ हैं हमारे ही निश्चय ये लोक हैं। देवता और ब्राह्मण कौन हैं अर्थात् कुछ नहीं ॥९॥

केशिन्युवाच ।

इहैवावां प्रतीक्षाव उपस्थाने विरोचन ! ।
सुधन्वा प्रातरागन्ता पश्येयं वां समागतौ ।१०।

केशिनी कहती है—हे विरोचन ! यहां ही मेरे पास आने में हम दोनों प्रतीक्षा (इन्तिज़ार) करेंगे प्रातःकाल सुधन्वा आवेगा तुम दोनों आये हुओं को मैं देखूंगी ।१०।

विरोचन उवाच ।

तथा भद्रे करिष्यामि यथा त्वं भीरु ! भाषसे ।

सुधन्वानं च मां चैव प्रातर्द्रष्टासि सङ्गतौ ॥११॥

विरोचन बोला—हे भद्रे केशिनी ! जैसा तू कहती है वैसा मैं करूंगा । सुधन्वा और मेरी सङ्गति (मेल) सवेरे देखोगी ॥११॥

विदुरउवाच ।

अतीतायां च शर्वर्यामुदिते सूर्यमण्डले ।
अथाजगाम तन्देशं सुधन्वा राजसत्तम! ॥१२॥

बिदुर जी कहते हैं—रात्रि बीतने पर सूर्य के उदय होते ही श्रेष्ठ राजा सुधन्वा वहां आया ॥१२॥

विरोचनोयत्रविभो! केशिन्यासहितः स्थितः ।
सुधन्वा च समागच्छत्प्राह्लादिं केशिनीं तथा ॥१३॥

हे विभो (धृतराष्ट्र) ! जहां विरोचन केशिनी के सहित स्थित था वहां सुधन्वाने केशिनी तथा विरोचन से समागम (मुलाकात) की ॥१३॥

समागतं द्विजं दृष्ट्वा केशिनी भरतर्षभ ! ।
प्रत्युत्थायासनं तस्मै पाद्यमर्घ्यं ददौ पुनः ॥१४॥

हे भरतर्षभ! आये हुए ब्राह्मण को देखकर केशिनी ने उठ ने कर फिर आसन पाद्य और अर्घ्य उस के लिये दिया १४

सुधन्वोवाच ।

अन्वालभे हिरण्मयम्प्राह्लादे! वरासनम् ।
एकत्वमुपसम्पन्नो न त्वासेऽहं त्वया सह।१५।

हे विरोचन! तेरे सोने के श्रेष्ठ आसन को छूता हूं एक कार्य्य वाले (अर्थात् केशिनी की प्राप्ति के लिये) हम दोनों हैं परन्तु तेरे साथ मैं नहीं बैठूंगा ॥ १५ ॥

विरोचन उवाच ।

तवार्हते तु फलकं कूर्चं वाप्यथवा बृसी ।
सुधन्वन्नत्वमर्हासि मया सह समासनम् ।१६।

हे सुधन्वा! तेरे योग्य तो फलक (पटेरे) का अथवा काश का आसन है तुम मेरे साथ बैठने को योग्य नहीं हो॥

सुधन्व उवाच ।

पितापुत्रौ सहासीतां द्वौ विप्रौ क्षत्रियावपि ।
वृद्धौ वैश्यौ च शूद्रौ च न त्वन्यावितरेतरम् १७

सुधन्वा बोला—पिता और पुत्र एक साथ बैठ सकते हैं

अथवा दो ब्राह्मण या दो क्षत्री तथा वृद्ध और शूद्र एक आसन पर बैठ सक्ते हैं और इतर नहीं बैठ सक्ते ॥१७॥

पिता हि ते समासीनमुपासीतैव मामधः ॥
बालः सखैधितो गेहे न त्वं किञ्चन बुध्यसे।१८।

तेरा पिता मुझ बैठे हुए से नीचे बैठता है बालकपन में सुधन्वा के साथ घर में इतना बड़ा हुआ। तू कुछ नहीं जानता ॥१८॥

विरोचन उवाच।

हिरण्यं च गवाश्वं च यद्वित्तमसुरेषु नः।
सुधन्वन्विपणे तेन प्रश्नं पृच्छाव ये विदुः।१९।

विरोचन बोला—हे सुधन्वा! सोना, गौयें, घोड़े आदि जो हमारे दैत्यों में धन है उस से विपण (शर्त्त) लगाकर जो विद्वान् हैं उन से प्रश्न (हम दोनों में कौन श्रेष्ठ है) पूंछो ॥१९॥

सुधन्वोवाच।

हिरण्यं च गवाश्वं च तवैवास्तु विरोचन!।
प्राणयोस्तु पणं कृत्वा प्रश्नं पृच्छाव ये विदुः२०

सुधन्वा बोला—हे विरोचन! सोना, घोड़ा, गौवें आदि तुम्हारे हो रहें प्राणों की शर्त लगा कर जो विद्वान् हैं उन से बूझो ॥२०॥

विरोचन उवाच।

आवां कुत्र गमिष्यावः प्राणयोर्विपणे कृते।
न तु देवेष्वहं स्थाता न मनुष्येषु कर्हिचित् ।२१।

विरोचन बोला कि प्राणों का विपण (बाज़ी) लगाकर हम दोनों कहां जायंगे देवता और मनुष्यों में कभी भी हम नहीं जायंगे ॥२१॥

सुधन्वोवाच

पितरं ते गमिष्यावःप्राणयोर्विपणेकृते।
पुत्रस्यापि स हेतोर्हि प्रह्लादो नानृतं वदेत् ॥२२॥

सुधन्वा बोला—प्राणों का विपण करके तेरे पिता के पास जावेंगे। पुत्र के लिये भी प्रह्लाद झूठ नहीं बोलेगा ॥२२॥

विदुर उवाच

एवं कृतपणौ क्रुद्धौ तत्राभिजग्मतुस्तदा।
विरोचनसुधन्वानौ प्रह्लादो यत्र तिष्ठति ॥२३॥

प्रह्लाद जहां रहता था वहां इस प्रकार विषण कर के क्रुद्ध हुए विरोचन और सुधन्वा दोनों गये ॥२३॥

प्रह्लाद उवाच ।

इमौ तौ सम्प्रदृश्येते याभ्यां न चरितं सह ।
आशीविषाविव क्रुद्धावेकमार्गाविहागतौ ॥२४॥

प्रह्लाद बोला—यह वे दोनों साथ दीखते हैं जो दोनों साथ होकर कभी नहीं चलते थे और सर्प के तुल्य क्रुद्ध हुए एक रास्ते से यहां आये हैं ॥२४॥

किं वै सहैवं चरथो न पुरा चरथः सह ।
विरोचनैतत्पृच्छामि किं ते सख्यं सुधन्वना २५

हे विरोचन! मैं ये पूंछता हूं कि क्या सुधन्वा के साथ तेरी मित्रता है जोकि तू इसके साथ विचरता है। पूर्व कभी इस प्रकार तू नहीं विचरता था ॥२५॥

विरोचन उवाच

न मे सुधन्वा सख्यं प्राणयोर्विपणावहै ।
प्रह्लाद! तत्त्वं पृच्छामि मा प्रश्नमनृतं वदेः ।२६।

विरोचन बोला—मेरी सुधन्वा के साथ मित्रता नहीं

किन्तु प्राणों का विषण है इस लिये प्रह्लाद ! तुम से प्रश्न पूंछता हूं झूंठ नहीं कहना ॥२६॥

प्रह्लाद उवाच ।

उदकं मधुपर्कं वाप्यानयन्तु सुधन्वने ।
ब्रह्मन्नभ्यर्चनीयोऽसि श्वेता गौःपोवरी कृता२७

प्रह्लाद बोला कि सुधन्वा के लिये जल और मधुपर्क और श्वेत (सफ़ेद) पुष्ट की हुई गौ लाओ। हे ब्राह्मण! आप पूजनीय हैं ॥२७॥

सुधन्वोवाच

उदकं मधुपर्कं च पथिष्ववार्जितं मम ।
प्रह्लाद त्वं तु मे तथ्यं प्रश्नं प्रब्रूहि पृच्छतः ।
किं ब्राह्मणाःस्विच्छ्रेयास उताहो स्विद्विरोचनः२८

सुधन्वा बोला—हे प्रह्लाद जल और मधुपर्क मुझे मार्ग में ही दे दिया मेरे पूंछे हुये प्रश्न को सत्य कहो कि ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं या विरोचन श्रेष्ठ है ॥ २८ ॥

प्रह्लाद उवाच ।

पुत्र एको मम ब्रह्मंस्त्वं च साक्षादिहास्थितः ।
तयोर्विवदतोःप्रश्नं कथमस्मद्विधो वदेत् ॥२९॥

हे ब्राह्मण ! मेरे एक तो पुत्र है और आप भी साक्षात् (प्रत्यक्ष) आये हुए हो । तुम दोनों के विवाद के प्रश्न को ऐसा मैं कैसे कहूं ॥ २९ ॥

सुधन्वोवाच ।

गां प्रदद्यास्त्वौरसाय यद्दान्यत्स्यात्प्रियं धनम् ।
द्वयोर्विवदतं.स्तथ्यं वाच्यं च मतिमंस्त्वया ३०

हे बुद्धिमान् ! गौयें अथवा और जो कुछ प्यारा धन हो वह पुत्र को दीजिये। दोनों के विवाद में सत्य कहो ॥३०॥

प्रह्लाद उवाच

अथ यो नैव प्रब्रूयात्सत्यं वा यदि वानृतम् ।
एतत्सुधन्वन् ! पृच्छामि दुर्विवक्ता स्म किं वसेत् ३१

प्रह्लाद बोला—हे सुधन्वा ! मैं तुम से यह पूंछता हूं जो सत्य वा असत्य कुछ नहीं कहे तो न कहने वाला कहां रहे (क्या फल होवे) ॥३१॥

सुधन्वोवाच

यां रात्रिमधिविन्ना स्त्री यां चैवाक्षपराजितः ।
यां च भाराभितप्ताङ्गो दुर्विक्ता स्म तां वसेत् ३२

सुधन्वा बोला—जिस रात्रि में जिस स्त्री को पुरुषने छोड़ दिया वह स्त्री रहे और जिस रात्रि में जुआ में हारा हुआ पुरुष अथवा जिस में बोझ से थका हुआ पुरुष रहे, न कहने वाला उस रात्रि में रहे (उपरोक्तों को उस रात्रि दुःख के कारण नींद नहीं आती और दुःख होता है वही न कहने वाले को होता है) ॥३२॥

नगरं प्रतिरुद्धःसन् बहिर्द्वारे बुभुक्षितः ।
अनित्रान् भयतः पश्येद्यःसाक्ष्यमनृतं वदेत् ३३

जो साक्षी में झूंठ बोले तो नगर से बाहर पड़ा हुआ द्वार पर भूखा रहे और अपने शत्रुओं को देखे (ऐसे दुःख को प्राप्त हो) ॥ ३३ ॥

पञ्च पश्वनृते हन्ति दश हन्ति गवानृते ।
शतमश्वानृते हन्ति सहस्रं पुरुषानृते ॥३४॥

पशु के लिये झूंठ बोलने वाला पांच को मारता है

गौओं के लिये झूंठ बोलने वाला दश को, घोड़े के लिये झूंठ बोलने वाला सौ को, पुरुष के लिये झूंठ बोलने वाला एक हज़ार को मारता है ॥ ३४ ॥

हन्ति जातानजातांश्च हिरण्यार्थेऽनृतं वदन् ।
सर्वं भूम्यनृते हन्ति मास्म भूम्यनृतं वदेः ॥३५॥

और जो धन के लिये झूंठ बोलने वाला है वह पैदा हुये और न हुये सब को मारता है और पृथ्वी के झूंठ बोलने वाला सब को मारता है इसलिये पृथ्वी (शरीर पार्थिव होने से पृथ्वी के तुल्य कहीगी) के लिये झूंठ मत बोल ।३५।

प्रह्लाद उवाच

मत्तः श्रेयानङ्गिरा वै सुधन्वा त्वद्विरोचन ! ।
मातास्य श्रेयसी मातुस्तस्मात्त्वं तेन वै जितः ।३६।

प्रह्लाद बोला—हे विरोचन ! मुझ से इस का पिता अंगिरा श्रेष्ठ है इसलिये सुधन्वा तुझ से श्रेष्ठ है और तुम्हारी माता से इस की माता श्रेष्ठ है इस से तुम को सुधन्वा ने जीत लिया ॥ ३६ ॥

विरोचन ! सुधन्वायं प्राणानामीश्वरस्तव ॥

सुधन्वन् ! पुनरिच्छामि त्वया दत्तं विरोचनम्।३७।

हे विरोचन ! यह सुधन्वा तुम्हारे प्राणों का स्वामी है । हे सुधन्वा ! विरोचन को तुम से दिया हुआ फिर चाहता हूं ॥ ३७ ॥

सुधन्वोवाच

यद्धर्ममवृणीथास्त्वं मा कामादनृतं वदीः ॥
पुनर्ददामि ते पुत्रं तस्मात्प्रह्लाद ! दुर्लभम्।३८।

सुधन्वा बोला—हे प्रह्लाद ! धर्म को तुम ने ग्रहण किया काम वश होकर झूंठ नहीं बोला इसलिये दुष्प्राप्य (न मिलने योग्य) तेरे पुत्र विरोचन को फिर देता हूं ॥३८॥

एष प्रह्लाद ! पुत्रस्ते मया दत्तो विरोचनः ॥
पादप्रक्षालनं कुर्यात्कुमार्याः सन्निधौ मम ।३९।

हे प्रह्लाद ! यह तुम्हारा पुत्र विरोचन मैंने दे दिया परन्तु कुमारी (केशिनी) के सामने मेरे चरण धोवे ॥३९॥

विदुर उवाच

तस्माद्राजेन्द्र ! भूम्यर्थं नानृतं वक्तुमर्हसि ॥
आगमः ससुतामात्यो नाशं पुत्रार्थमब्रुवन्।४०।

तिस लिये हे राजा ! (धृतराष्ट्र) भूमि के लिये झूंठ बोलने के योग्य नहीं हो पुत्र के लाभ के लिये झूंठ न बोलता हुआ मन्त्री और पुत्रों सहित नाश को न प्राप्त हो (अर्थात् पुत्रों को पृथ्वी आदि मिलने के लोभ से असत्य न बोलो) ॥४०॥

न देवा दण्डमादाय रक्षन्ति पशुपालवत् ॥
यंतुरक्षितुमिच्छन्ति बुद्ध्या संविभजन्ति तम्॥४१॥

देवता दण्ड (लकड़ी) लेकर पशु पालने वाले की तरह रक्षा नहीं करते किन्तु जिस की रक्षा करना चाहते हैं उस को बुद्धि से विभूषित करते हैं (बुद्धि शुद्ध कर देते हैं) ४१

यथा यथा हि पुरुषः कल्याणे कुरुते मनः ।
तथा तथास्य सर्वार्थाः सिध्यन्ते नात्र संशयः॥४२॥

मनुष्य जैसे २ शुभ कर्मों में मन लगाता है वैसे २ इस के सब कार्य सिद्ध होते हैं इस में कुछ संशय नहीं है ४२

नैनं छन्दांसि वृजिनात्तारयन्ति मयाविनं माया वर्त्तमानम । नीडं शकुन्ता इव जातपक्षाश्छन्दांस्येनं प्रजहत्यन्तकाले ॥४३॥

माया से वर्त्तमान मायावी इस पुरुष को वेद पापों से नहीं तारते किन्तु जैसे पंखों वाले पक्षी घोंसले को छोड़ देते उसी प्रकार मरण समय में वेद उस को छोड़ देते हैं (जैसे जब तक बच्चा अंडे में रहता तब ही घोंसले में पुनः पर होने पर उड़ जाता है। ऐसे ही जब तक मायावी जीता है तब तक विद्या उस में रहती है पुनः छोड़ जाती है) ॥ ४३ ॥

मद्यपानं कलहं पूगवैरं भार्यापत्योरन्तरं ज्ञाति-भेदम् । राजद्विष्टं स्त्रीपुंसयोर्विवादं वर्ज्यान्या-दुर्यश्च पन्थाः प्रदुष्टः ॥ ४४ ॥

मदिरा का पीना, कलह (लड़ाई), समुदाय से वैर, स्त्री पुरुष में अन्तर (नाइत्तिफ़ाकी), कुटुम्ब का भेद, राजा से द्वेष, स्त्री पुरुष के झगड़े और दुष्ट मार्ग को छोड़ देना चाहिये ॥ ४४ ॥

सामुद्रिकं वणिजं चोरपूर्वं शलाकधूर्तं च चि-कित्सकं च । अग्निं च मित्रं च कुशीलवं च नैतान्साक्ष्येत्वधिकुर्वीत सप्त ॥ ४५ ॥

सामुद्रिक बनिया, जो पहले चोर था, पासे खेलने वाले धूर्त्त को, वैद्य, शत्रु, मित्र और भाट इन ७ को साक्ष्य का अधिकारी न करे (अर्थात् इन सब से साक्ष्य (गवाही) न दिलवावे) ॥ ४५ ॥

मानाग्निहोत्रमुत मानमौनं मानेनाधीतमुत मानयज्ञः। एतानि चत्वार्यभयङ्कराणि भयं प्रयच्छन्त्ययथाकृतानि ॥ ४६ ॥

ये चार कर्म १ प्रमाण से किया हुआ अग्निहोत्र २ प्रमाण से चुप होना ३ प्रमाण से पढ़ना ४ प्रमाण से यज्ञ करना, अभय (बेख़ौफ़) करने वाले हैं परन्तु उल्टे करने से भय को देने वाले हैं ॥ ४६ ॥

अगारदाहो गरदः कुण्डाशी सोमविक्रयी।
पर्वकारश्च सूची च मित्रध्रुक् पारदारिकः ।४७।

मकानों को जलाने वाला, ज़हर (विष) देने वाला व्यभिचार से उत्पन्न हुये सन्तान की आशा से जीने वाला, सोम (यज्ञ की वस्तु सोमलतादि वा मदिरादि) का बेचने वाला, शस्त्रों (हथियारों) का बनाने वाला (क्योंकि इन हथियारों से हिंसा की जाती है), चुगल (चुगली करने

वाला), मित्र को मारने वाला, दूसरे की स्त्री से गमन करने वाला ॥ ४७ ॥

भ्रूणहा गुरुतल्पी च यश्च स्यात्पानपो द्विजः ।
अतितीक्ष्णश्च काकश्च नास्तिको वेदनिन्दकः ४८

गर्भ को नष्ट करने वाला, गुरु की स्त्री से गमन करने वाला, द्विज (ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्यादि कोई) मदिरा पीने वाला हो, अति क्रोधी, कौआ की तरह वृत्ति वाला, नास्तिक, वेद का निन्दक ॥ ४८ ॥

स्तेनप्रग्रहणो व्रात्यः कीनाशश्चात्मवानपि ।
रक्षेत्युक्तश्च यो हिंस्यात्सर्वे ब्रह्महभिःसमाः ४९

रिश्वत (घूंस) लेने वाला, यज्ञोपवीत का समय बीत गया हो जिस द्विज का, कृपण (लोभी) और समर्थ हो मेरी रक्षा करो ऐसे कहते हुये पुरुष को भी मारे, ये सब ब्रह्महत्यारे के समान हैं ॥ ४९ ॥

तृणोल्कया ज्ञायते जातरूपं, वृत्तेन भद्रो व्यवहारेण साधुः । शूरो भयेष्वर्थकृच्छ्रेषु धीरः, कृच्छ्रास्वापत्सु सुहृदोऽरयश्च ॥ ५० ॥

तिनका की अग्नि से सुवर्ण का रूप मालूम होता है, और श्रेष्ठ पुरुष आचरणोंसे और साधु (सज्जन) व्यवहार से, भय में शूर (वीर), कठिन कार्य्यों में धैर्य्यवान्, कठिन विपत्तियों में मित्र और शत्रु जाने जाते हैं ॥ ५० ॥

जरा रूपं हरति हि धैर्यमाशा
मृत्युः प्राणान्धर्मचर्यामसूया ।
क्रोधः श्रियं शीलमनार्यसेवा,
ह्रियंकामः सर्वमेवाभिमानः ॥५१॥

बुढ़ापा रूप को, और आशा धैर्य्य को, प्राणों को मृत्यु, और धर्म को निन्दा (एक दूसरे की बुराई), क्रोध लक्ष्मी को, नीच की सेवा शील को, काम लज्जा को, और अभिमान सब को हर लेता है (नष्ट करता है) ॥ ५१ ॥

श्रीर्मङ्गलात्प्रभवति प्रागल्भ्यात्सम्प्रवर्धते ।
दाक्ष्यात्तु कुरुते मूलं संयमात्प्रतितिष्ठति ।५२ ।

शुभ कार्य्यों के करने से लक्ष्मी उत्पन्न होती, ढीटपन से बढ़ती है, चतुराई से स्थिर होती है, और संयम से प्रतिष्ठित होती है ॥ ५२ ॥

अष्टौ गुणाः पुरुषं दीपयन्ति प्रज्ञा च कौल्यं च दमः श्रुतं च । पराक्रमश्चाबहुभाषिता च दानं यथाशक्ति कृतज्ञता च ॥ ५३ ॥

पुरुष को यह १ बुद्धि २ कुलीनता ३ इन्द्रियों को वश करना ४ पढ़ना ५ पराक्रम (दिलेरी) ६ थोड़ा समयानुसार बोलना ७ यथाशक्ति दान ८ किये हुए का मानना, आठ गुण प्रकाशित (प्रसिद्ध) करते हैं ॥५३॥

एतान्गुणांस्तात! महानुभावानेको गुणःसंश्रयते प्रसह्य । राजा यदा सत्कुरुते मनुष्यं सर्वान् गुणानेष गुणो विभाति ॥५४॥

हे तात धृतराष्ट्र! इन महामहिमा वाले गुणों को एक गुण बलात्कार (ज़बरदस्ती) से आश्रय करता है अर्थात् जब राजा मनुष्य का आदर करता है तो यह गुण सब गुणों को शोभित करता है ॥५४॥

अष्टौ नृपेमानि मनुष्यलोके स्वर्गस्य लोकस्य निदर्शनानि। चत्वार्येषामन्ववेतानि सद्भिश्चत्वारि चैषामनुयान्ति सन्तः ॥५५॥

हे राजाधृतराष्ट्र ! यह आठ संसार में मनुष्य के स्वर्ग-लोक के निदर्शन (नमूना) हैं इन में चार सत्पुरुषों से नित्य सेवित हैं और चार को इन में से सन्त (अष्ट) आचरण करते हैं ॥५५॥

यज्ञो दानमध्ययनं तपश्च चत्वार्येतान्यन्ववेता-
नि साद्भिः । दमः सत्यमार्जवमानृशंस्यं चत्वा-
र्येतान्यनुयान्ति सन्तः ॥५६॥

यज्ञ, दान, पढ़ना और तप यह चार सत्पुरुषों से सेवित हैं इन्द्रियों का वश करना सत्य बोलना, कोमलता, अहिंसक होना; यह चार सन्त (साधुओं) से सेवित हैं ॥५६॥

इज्याध्ययनदानानि तपः सत्यं क्षमा घृणा ।
अलोभ इति मार्गोऽयं धर्मस्याष्टविधःस्मृतः५७

यज्ञ, पढ़ना, दान, तप, सत्य, क्षमा, दया, लोभ न होना; यह आठ प्रकार का धर्म का मार्ग कहागया है ५७

तत्र पूर्वश्चतुर्वर्गो दम्भार्थमपि सेव्यते ।
उत्तरश्च चतुर्वर्गो नामहात्मसु तिष्ठति ॥५८॥

इन में चार पूर्व के तो पाखण्ड के लिये भी सेवन करते हैं और पीछे के चार महात्माओं ही में ठहरते (महात्मा

ही सेवन करते) हैं ॥५८॥

न सा सभा यत्र न सन्ति वृद्धा न ते वृद्धा ये न वदन्ति धर्मम् । नासौ धर्मो यत्र न सत्यमस्ति न तत्सत्यं यच्छलेनाभ्युपेतम् ॥५९॥

वह सभा नहीं जहां वृद्ध (विद्वान्) नहीं और वह विद्वान् नहीं जो धर्म की बात नहीं कहते और वह धर्म नहीं जिस में सत्य न हो और वह सत्य नहीं जो कपट सहित हो ॥५९॥

सत्यं रूपं श्रुतं विद्या कौल्यं शीलं बलं धनम् । शौर्यं च चित्रभाष्यं च दशेमे स्वर्गयोनयः॥६०॥

१ सत्य २ रूप ३ पढ़ना ४ विद्या ५ कुलीनता ६ शील ७ बल ८ धन ९ शौर्य १० विचित्रकथन, ये दश स्वर्ग योनि (शरीर) हैं ॥६०॥

पापं कुर्वन्पापकीर्तिः पापमेवाश्नुते फलम् । पुण्यं कुर्वन्पुण्यकीर्तिः पुण्यमत्यन्तमश्नुते ६१

पाप करता हुआ पापकीर्त्ति (यश) वाला मनुष्य पाप रूप फल को भोगता है और पुण्य करता हुआ पु-

यशकीर्तिवाला पुण्य रूप फल को भोगता है ॥६१॥

तस्मात्पापं न कुर्वीत पुरुषः शंसितव्रतः ।
पापं प्रज्ञां नाशयति क्रियमाणं पुनः पुनः ॥६२॥

इसलिये जिस को व्रत विधान किया है ऐसा पुरुष पाप को नहीं करे क्योंकि बार २ किया हुआ पाप बुद्धि को नष्ट कर देता है ॥ ६२ ॥

नष्टप्रज्ञः पापमेव नित्यमारभते नरः ।
पुण्यं प्रज्ञां वर्धयति क्रियमाणं पुनः पुनः ॥६३॥

नष्ट हुई बुद्धिवाला मनुष्य पापों का नित्य आरम्भकरता है और बार २ किया हुआ पुण्य बुद्धि को बढ़ाता है ॥६३॥

वृद्धप्रज्ञः पुण्यमेव नित्यमारभते नरः ।
पुण्यं कुर्वन्पुण्यकीर्तिः पुण्यं स्थानं स्म गच्छति ।
तस्मात्पुण्यं निषेवेत पुरुषःसुसमाहितः ॥६४॥

बढ़ी हुई बुद्धि वाला मनुष्य पुण्य (पवित्र कर्मों का) का नित्य आरम्भ करता है पुण्य करता हुआ पुण्य (पवित्र) कीर्त्ति वाला मनुष्य पुण्य स्थान में जाता है इसलिये एकाग्रचित्त हुआ मनुष्य पवित्र (शुभकर्मों) का सेवन करे ६४

असूयको दन्दशूको निष्ठुरो वैरकृच्छठः ।
स कृच्छ्रं महदाप्नोति न चिरात्पापमाचरन् ।६५।

निन्दक (इधर उधर एक दूसरे की बुराई करने वाला,) हिंसक (सर्प के समान दूसरे के हृदय दुखाने व दुःख देने वाला) निर्दयी, वैर करने वाला, और मूर्ख पापों का है आचार करता हुआ बहुत दिनों के कठिनदुःख को पाता।६५।

अनसूयुः कृतप्रज्ञः शोभनान्याचरन्सदा ।
न कृच्छ्रं महदाप्नोति सर्वत्र च विरोचते ।६६।

जो किसी की निन्दा नहीं करता, बुद्धिमान् है, पवित्र (शुद्ध) जिस के आचरण हैं वह बड़े दुःख को नहीं पाता और सब जगह शोभा को पाता है ॥ ६६ ॥

प्रज्ञामेवागमयति यः प्राज्ञेभ्यः स पण्डितः ।
प्राज्ञो ह्यवाप्य धर्मार्थौ शक्नोति सुखमेधितुम् ६७

जो बुद्धिमानों से बुद्धि को प्राप्त करता वही पण्डित है बुद्धिमान् (पण्डित) ही धर्म, अर्थ को प्राप्त होकर सुख पूर्वक बढ़ सकता है ॥ ६७ ॥

दिवसेनैव तत्कुर्याद्येन रात्रौ सुखं वसेत् ।

अष्टमासेन तत्कुर्याद्येन वर्षाःसुखं वसेत् ॥६८॥

मनुष्य दिन से वह काम करे जिस से रात्रि में सुख पूर्वक रहे, आठ महीनों में वह काम करे जिस से वर्षा ऋतु में सुख से रहे ॥ ६८ ॥

पूर्वे वयसि तत्कुर्याद्येन वृद्धः सुखं वसेत् ।
यावज्जीवेन तत्कुर्याद्येन प्रेत्य सुखं वसेत् ।६९।

पहली अवस्था में वह काम करे जिस से वृद्धावस्थामें सुख से रहे, जबतक जिये तब तक वह काम करे जिस से मर कर सुख से रहे ॥

(मनुष्य को वह काम करना उचित है जिस से भविष्यत् में सुख होवे विदुर जी कहते हैं कि धृतराष्ट्र तुम अपने पुत्रों के लिये राज्य मिलता देखते हो सो नहीं क्योंकि इस से आपस में विद्रोह करके कट मर जांयगे फिर यह यहां ही पड़ा रहजायगा मरकरके भी दुःख इन दुष्कर्मों का भोगोगे अर्थात् कुछ भी सुख नहीं मिलेगा उल्टा दुःख प्राप्त होगा) ॥ ६९ ॥

जीर्णमन्नं प्रशंसन्ति भार्यां च गतयौवनाम् ।
शूरं विजितसंग्रामं गतपारं तपस्विनम् ॥७०॥

उस अन्न की जो पच (हजम हो) जावे, और उस स्त्री की जिसका यौवन बीतजावे (यौवन अवस्था में शुभ-कर्मानुगामिनी बनी रहे) ऐसे शूर की जो संग्राम (युद्ध) को जीत लेवे और जो पार होजावे (बीच में ही न रह जावे) ऐसे तपस्वी की प्रशंसा करनी चाहिये ॥७०॥

धनेनाधर्मलब्धेन यच्छिद्रमपिधीयते ।
असंवृतं तद्भवति ततोन्यवदीर्यते ॥ ७१ ॥

अधर्म से प्राप्त हुवे धन से जो छिद्रों (दोषों) को ढांकना (छिपाना) चाहता है वह ढांका हुआ नहीं रहता बल्कि दूसरी जगह खुल जाता है दोष नहीं छिपते ॥ ७१ ॥

गुरुरात्मवतां शास्ता शास्ता राजा दुरात्मनाम् ।
अथ प्रच्छन्नपापानां शास्ता वैवस्वतो यमः ।७२।

गुरु आत्मवानों (मन जीतने वालों) का शिक्षा करने वाला है और दुष्ट पुरुषों का राजा और छिपे हुये पापकर्त्ताओं का परमात्मा शिक्षा देनेवाला है ॥ ७२ ॥

ऋषीणां च नदीनां च कुलानां च महात्मनाम् ।
प्रभवो नाधिगन्तव्यः स्त्रीणां दुश्चरितस्य च ।७३।

स्त्रियों के दुश्चरित्रों, (कर्मों) ऋषि, नदी और महात्माओं के कुल का मूल नहीं जाना जाता है (इन का अभिप्राय नहीं जाना जाता) ॥ ७३ ॥

द्विजातिपूजाभिरतो दाता ज्ञातिषु चार्जवी ।
क्षत्रियः शीलभाग्राजंश्चिरं पालयते महीम् ।७४।

ब्राह्मणों का आदर करने वाला, दान देने वाला, अपने कुटुम्ब के साथ अच्छा वर्त्ताव करने वाला, शीलवान्, क्षत्रिय; बहुत दिन तक पृथ्वी का पालन करता है (राज्य करता है) । ।७४ ॥

सुवर्णपुष्पां पृथिवीं चिन्वन्ति पुरुषास्त्रयः ॥
शूरश्च कृतविद्यश्च यश्च जानाति सेवितुम् ।७५।

इस सोने के फूल वाली पृथ्वी से तीन पुरुष कमाते हैं १ शूर २ विद्वान् ३ जो सेवा करना जानता है (विद्वान्, सेवक, शूर इस संसार में धन को पैदा करते हैं) ॥ ७५ ॥

बुद्धिश्रेष्ठानि कर्माणि बाहुमध्यानि भारत ॥
तानि जङ्घाजघन्यानि भारप्रत्यवराणि च ।७६।

बुद्धि से होने वाले कार्य्य श्रेष्ठ और भुजाओं से होने

वाले मध्यम और जङ्घाओं से होने वाले नीच, सिर से बोझादि ढोने के कार्य्य अति नीच हैं ॥ ७६ ॥

दुर्योधनेऽथ शकुनौ मूढे दुःशासने तथा ॥
कर्णे चैश्वर्य्यमाधाय कथं ? त्वंभूतिमिच्छसि।७७।

दुर्योधन, शकुनि, मूढ़ दुःशासन तथा कर्ण को राज्य का प्रबन्ध देकर (स्वामी बना कर) तुम किस प्रकार उन्नति चाहते हो ॥ ७७ ॥

सर्वैर्गुणैरुपेतास्तु पाण्डवा भरतर्षभ ! ॥
पितृवत्त्वयि वर्तन्ते तेषु वर्तस्व पुत्रवत् ॥७८॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि चतुस्त्रिंशो-
ऽध्यायः ॥ विदुरहितवाक्ये प्रजागरपर्वणि
च तृतीयः ॥ ३ ॥

हे धृतराष्ट्र ! उपरोक्त सब सद्गुणों से युक्त पाण्डव हैं और पिता के तुल्य तुम से वर्त्ताव करते हैं इसलिये उन में तुम भी पुत्र के तुल्य व्यवहार करो ॥ ७८ ॥

यह विदुरनीति भाषानुवाद में तीसरा अध्याय हुवा ॥

विदुर उवाच

अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ॥
आत्रेयस्य च संवादं साध्यानां चेति नः श्रुतम्।१।

विदुर जी कहते हैं कि आत्रेय (दत्तात्रेय) का और साध्यों (किन्नरादि देवतों में से एक प्रकार के देवता) के संवाद इस पुराने इतिहास को इस विषय में कहते हैं ऐसा हमारा सुना हुआ है ॥१॥

चरन्तं हंसरूपेण महर्षिं शंसितव्रतम् ॥
साध्या देवा महाप्राज्ञं पर्यपृच्छन्त वै पुरा ॥२॥

महा बुद्धिमान् व्रत को धारण किये हुये परमहंसरूप से चरते हुये महर्षि से साध्य देवोंने पहले पूंछा ॥२॥

साध्या ऊचुः ॥

साध्या देवा वयमेते महर्षे, दृष्ट्वा भवन्तं न
शक्नुमोऽनुमातुम् । श्रुतेन धीरो बुद्धिमांस्त्वं मतो
नः, काव्यां वाचं वक्तुमर्हस्युदाराम् ॥ ३ ॥

साध्य देव बोले—हे महर्षि ! हम सब ये साध्य देव हैं

आप को देख कर हम (आप की ज्ञानसीमा का) अनुमान नहीं कर सकते, वेद से बुद्धिमान् और धीर तुम हमारे माने हुवे हो बड़ी पण्डित्य की वाणी कह सकते हो ॥३॥

हंस उवाच ॥

एतत्कार्यममराः संश्रुतं मे धृतिः शमः सत्यधर्मानुवृत्तिः। ग्रन्थिं विनीय हृदयस्य सर्वं प्रियाप्रिये चात्मसमं नयीत ॥४॥

परमहंस बोले—हेदेवताओ ! मेरा सुना हुआ है यह करना चाहिये। धैर्य्य, मन की शान्ति, सत्य और धर्म के पीछे चलना और हृदय की गांठ को खोल कर सब को तथा दुःख सुख को अपने बराबर लेचले ॥ ४ ॥

आक्रुश्यमानो नाक्रोशेन्मन्युरेवतितिक्षतुः।
आक्रोष्टारं निर्दहति सुकृतं चास्य विन्दति ॥५॥

गाली देने वाले को गाली न देवे, क्योंकि सहने वाले का क्रोध ही गाली देने वाले को जलाता है और इस का पुण्य बढ़ता है ॥ ५ ॥

नाक्रोशी स्यान्नावमानी परस्य, मित्रद्रोही नोत

नीचोपसेवी । न चाभिमानी न च हीनवृत्तो, रूक्षां वाचं रुषतीं वर्जयीत ॥ ६ ॥

दूसरे को गाली देनेवाला न हो न दूसरे का अपमान करे मित्र से दुश्मनी न करे और न नीच की सेवा करे और न अभिमानी हो न आचरणों से हीन हो और रूखी कठोर वाणी को छोड़ देवे (न बोले) ॥६॥

मर्माण्यस्थीनि हृदयं तथासून् रूक्षा वाचो निर्दहन्तीह पुंसाम्। तस्माद्वाचमुपतीमुग्ररूपां धर्मारामो नित्यशो वर्जयीत ॥ ७ ॥

रूखी वाणी मनुष्यों के मर्मस्थलों हड्डियों तथा हृदय और प्राणों को जलाती हैं इसलिये धर्मात्मा घोर रूप वाली रूखी वाणी को नित्य छोड़ देवे ॥ ७ ॥

अरुन्तुदंपरुषं रूक्षवाचं वाक्कण्टकैर्वितुदन्तं मनुष्यान्। विद्यादलक्ष्मीकतमं जनानां मुखे निबद्धां निर्ऋतिं वे वहन्तम् ॥ ८ ॥

मर्म को छूने वाली कठोर रूखी वाणी वाले, वाणी रूप कांटों से मनुष्यों को छेदते (दुःखदेते) हुए

को अति दरिद्री जानो और जानो मुख में राक्षसी को दाबे हुये फिरता है ॥८॥

परश्चेदेनमभिविध्येत बाणैर्भृशं सुतीक्ष्णैरनला-
र्कदीप्तैः । स विध्यमानोऽप्यतिदह्यमानो विद्या-
त्कविःसुकृतं मे दधाति ॥ ९ ॥

दूसरा इस को तीक्ष्ण बाणों से और अग्नि से तपाये हुवे बाण से छेदे (दुःख दे) तौभी वह छेदा हुआ अति जलाया हुआ बुद्धिमान् यह जाने किमेरे पुण्य का पालन करता है॥

यदि सन्तं सेवति यद्यसन्तं तपस्विनं यदि वा
स्तेनमेव । वासो यथा रङ्गवशं प्रयाति तथास
तेषां वशमभ्युपैति ॥ १० ॥

जो सन्त (सज्जन) का सेवन करता है वा दुष्ट वा तपस्वी का या चोर का तो उसी के वश में हो जाता है जैसे कपड़े को जैसा रंगे वैसाही रंग चढ़ता है ॥१०॥

अतिवादं न प्रवदेन्न वादयेद्यो नाहतः प्रतिहन्यान्न
घातयेत् । हन्तुं च यो नेच्छति पापकं वै तस्मै
देवाः स्पृहयन्त्यागताय ॥ ११ ॥

अति बाद् न कहे न कहवावे मारा हुआ भी बदले में न मारे न दूसरे से मरवावे और पापी को भी जो मारना नहीं चाहता उस के आगमन को देवता चाहते हैं ।११।

अव्याहृतंव्याहृताच्छ्रेय आहुः सत्यं वदेद्व्याहृतं तद्द्वितीयम्। प्रियं वदेद्व्याहृतं तत्तृतीयं धर्मं वदेद्व्याहृतं तच्चतुर्थम् ॥ १२ ॥

असत्यादि बोलने से न बोलना अच्छा, बोलने में सत्य बोलना दूसरा, और प्रिय बोलना तीसरा, धर्मयुक्त बोलना चौथा है (न बोलने से बोलना एक दर्जे अच्छा, सत्य सहित बोलना दो दर्जे अच्छा है, और सत्य भी प्रिय बोलना तीन दर्जे अच्छा, सत्य प्रिय बोलने से हित धर्मयुक्त बोलना चार दर्जे अच्छा है ॥१२॥

यादृशैः सन्निविशते यादृशांश्चोपसेवते ॥
यादृगिच्छेच्च भवितुं तादृग्भवति पूरुषः॥ १३ ॥

मनुष्य जैसों के पास रहता है और जैसों की सेवा करता है और जैसा होना चाहता है वैसाही होजाता है ।१३।

यतो यतो निवर्तते ततस्ततो विमुच्यते ॥

निवर्तनाद्धि सर्वतो न वेत्ति दुःखमण्वपि ।१४।

जैसा २ निवृत्त (हटता) होता है वैसा २ छूटता है। चारों ओर से निवृत्त होने से थोड़ा भी दुःख नहीं जानता (पाता) (वैराग्य में सुख है) ॥ १४ ॥

न जीयते चानुजिगीषतेऽन्यान्न वैरकृज्जाप्रतिघातकश्च । निन्दाप्रशंसासु समस्वभावो न शोचते हृष्यति नैव चायम् ॥ १५ ॥

और यह न दूसरे से जीता जाता है न औरों को जीतना चाहता है न वैर करने वाला होता न दूसरे को बदले में मारता, निन्दा और प्रशंसा में समान स्वभाव रहता है और यह न कभी शोक करता है न हर्ष ।१५।

भावमिच्छति सर्वस्य नाभावे कुरुते मनः ॥
सत्यवादी मृदुर्दान्तो यः स उत्तमपुरुषः ॥१६॥

जो सब की भलाई चाहता है, किसी की बुराई में मन नहीं लगाता, सत्य बोलता, कोमल स्वभाव, इन्द्रियों को वश में रखता है वह उत्तम पुरुष है ॥ १६ ॥

नानर्थकं सान्त्वयति प्रतिज्ञाय ददाति च ॥

रन्ध्रं परस्य जानाति यः स मध्यमपूरुषः।१७।

जो व्यर्थ (झूंठ मूंठ) किसी को नहीं समझाता। जितनी प्रतिज्ञा देने की करे वितना देता है, पराये दोष जानता है, वह मध्यम पुरुष है ॥ १७ ॥

दुःशासनस्तृपहतोऽभिशस्तो नावर्तते मन्युवशात्कृतघ्नः। नकस्यचिन्मित्रमथोदुरात्माकलाश्चैता अधमस्येह पुंसः ॥ १८ ॥

परन्तु दुःशासन तो पिटते बचाया गया तब भी कृतघ्न क्रोधवश दुष्कर्म से निवृत्त नहीं होता। न किसी का मित्र है, दुरात्मा है। ये लक्षण अधम पुरुष के हैं ॥ १८ ॥

न श्रद्दधाति कल्याणं परेभ्योऽप्यात्मशङ्कितः ॥
निराकरोतिमित्राणि योवै सोऽधमपूरुषः ॥१९॥

जो भलाई की बात में भी अन्यों का विश्वास नहीं करता, सदा मन में डरता रहता है, मित्रों को दूर करता है, वह अधम (नीच) पुरुष है ॥ १९ ॥

उत्तमानेव सेवेत प्राप्तकाले तु मध्यमान् ॥
अधमांस्तु न सेवेत य इच्छेद्भूतिमात्मनः ।२०।

जो अपनी भलाई चाहे वह उत्तम पुरुषों की ही सेवा करे, समय पड़े पर मध्यमों की सेवा करले, परन्तु अधमों की सर्वथा नहीं ॥ २० ॥

प्राप्नोति वैचित्त्यमसद्बलेन नित्योत्थानात्प्रज्ञया पौरुषेण । न त्वेव सम्यग्लभते प्रशंसां न वृत्तमाप्नोति महाकुलानाम् ॥ २१ ॥

जो मनुष्य दुष्ट बल से उन्मत्त है, वा नित्य की उन्नति और बुद्धि वा पुरुषार्थ का घमण्डी है, वह अच्छी प्रशंसा को नहीं पाता और न वह कुलीन (सज्जन) गिना जाता है ॥ २१ ॥

धृतराष्ट्र उवाच ॥

महाकुलेभ्यः स्पृहयन्ति देवा धर्मार्थनित्याश्च बहुश्रुताश्च। पृच्छामि त्वां विदुर प्रश्नमेतं भवन्ति वै कानि महाकुलानि ॥ २२ ॥

धृतराष्ट्र बोले—नित्य धर्म अर्थ वाले बहुश्रुत देवता (विद्वान्) लोग महाकुलों की इच्छा करते हैं, सो हे विदुर ! मैं तुमसे पूंछता हूं कि वे महाकुल कौन से हैं ? ॥

विदुर उवाच ॥

तपो दमो ब्रह्म वित्तं वितानाः, पुण्या विवाहाः सततान्नदानम् । येष्वेवैते सप्त गुणा वसन्ति, सम्यग्वृत्तास्तानि महाकुलानि ॥ २३ ॥

विदुर जी बोले कि—तप, इन्द्रिय दमन, वेद, धन, वेदोक्तयज्ञ, पवित्र विवाह, निरन्तर अन्नदान ये ७ गुण जिन में सदाचारयुक्त हों, वे महाकुल जानो ॥ २३ ॥

येषां न वृत्तं व्यथते न योनिश्चित्तप्रसादेन चरन्ति धर्मम्। ये कीर्तिमिच्छन्ति कुले विशिष्टां, त्यक्तानृतास्तानि महाकुलानि ॥ २४ ॥

जिन के पवित्राचार से वा कुल से किसी का चित्त न दुखे, प्रसन्न चित्त से जो धर्माचरण करते हैं, अपने कुल की विशेष कीर्त्ति को जो चाहते हैं, जो झूंठ नहीं बोलते, उनके महाकुल हैं ॥ २४ ॥

अनिज्यया कुविवाहैर्वेदस्योत्सादनेन च ॥
कुलान्यकुलतां यान्ति धर्मस्यातिक्रमेण च ॥ २५ ॥

यज्ञों के त्याग, बुरे विवाह, वेद की जड़ उखाड़ने, और धर्म के उल्लंघन से, कुल अकुल (भ्रष्ट) होजाते हैं।२५।

देवद्रव्यविनाशेन ब्रह्मस्वहरणेन च ॥
कुलान्यकुलतां यान्ति ब्राह्मगातिक्रमेण च।२६।

देवद्रव्य के बिगाड़ने, ब्राह्मणधन के हरण, ब्राह्मणों की आज्ञा के उल्लंघन से कुल अकुल भाव को प्राप्त हो जाते हैं ॥ २६ ॥

ब्राह्मगानां परिभवात्परिवादाच्च भारत ॥
कुलान्यकुलतां यान्ति न्यासापहरणेन च॥२७॥

हे धृतराष्ट्र ! ब्राह्मणों के तिरस्कार और निन्दा से, और धरोहरों के दबालेने से कुल अकुल होजाते हैं।२७।

कुलानि समुपेतानि गोभिः पुरुषतोऽर्थतः ॥
कुलसंख्यां न गच्छन्ति यानि हीनानि वृत्ततः।२८।

जिन कुलों में गौ मनुष्य और धनादि बहुत भी है परन्तु आचरणहीन हैं वे कुलों की गणना में कुल नहीं ॥ २८ ॥

वृत्ततस्त्वविहीनानि कुलान्यल्पधनान्यपि ॥

कुलसंख्यां च गच्छन्ति कर्षन्ति च महद्यशः ।२९।

परन्तु जिन कुलों में चाहे अल्प धन हो किन्तु आचरण हीन न हों वे कुल गणना को प्राप्त होते हैं और बड़ा यश कमाते हैं ।।२९।।

वृत्तं यत्नेन संरक्षेद्वित्तमेति च याति च ॥
अक्षीणो वित्ततः क्षीणो वृत्ततस्तु हतो हतः।३०।

आचरण की यत्न से रक्षा करै, धन तो आता जाता ही है, धन से क्षीण हुआ क्षीण नहीं होता किन्तु आचरण से हीन, हीन है ॥ ३० ॥

गोभिः पशुभिरश्वैश्च कृष्या च सुसमृद्धया ॥
कुलानि न प्ररोहन्ति यानि हीनानि वृत्ततः।३१।

जो लोग आचरण से हीन हैं वे न तो गौओं से उन्नत होसकते हैं, न पशुओं से, न घोड़े, वा भारी खेती से ।३१।

मा नः कुले वैरकृत्कश्चिदस्तु राजामात्यो मा परस्वापहारी। मित्रद्रोही नैकृतिकोऽनृती वा पूर्वाशी वा पितृदेवातिथिभ्यः ॥ ३२ ॥

हमारे कुल में कोई भी वैर करने वाला, राजा वा

मन्त्री, पराये धन का चुरानेवाला, मित्रद्रोही, धरोहर मारनेवाला, झूंठ बोलने वाला और पितरों देवों तथा अतिथियों से पूर्व खाने वाला, न हो ॥३२॥

यश्च नो ब्राह्मणान्हन्याद्यश्च नो ब्राह्मणान्द्विषेत्
न नःससमितिं गच्छेद्यश्च नोनिर्वपेत् कृषिम् ३३

हम में से जो ब्राह्मण का वध करनेवाला, और ब्राह्मणों से द्वेष करनेवाला और खेती का उजाड़ा हो वह हमारी सभा में न आवे ॥ ३३ ॥

तृणानि भूमिरुदकं वाक्चतुर्थी च सूनृता ।
सतामेतानि गेहेषु नोच्छिद्यन्ते कदाचन ॥३४॥

आसन, स्थान, जल, और प्रिय वचन, ये ४ वस्तु भले मनुष्यों के घर से लुप्त नहीं होतीं ॥३४॥

श्रद्धया परया राजन्नुपनीतानि सत्कृतिम् ।
प्रवृत्तानि महाप्राज्ञ ! धर्मिणां पुण्यकर्मिणाम् ३५

हे महाप्राज्ञ राजा ! (किन्तु चारों वस्तु) पुण्यात्मा धर्मात्माओं की परम श्रद्धा से, सत्कारपूर्वक उपस्थित रहती हैं ॥ ३५ ॥

सूक्ष्मोपि भारं नृपते ! स्यन्दनो वै शक्तो वोढु न तथान्ये महीजाः। एवंयुक्ता भारसहा भवन्ति महाकुलीना न तथान्ये मनुष्याः ॥३६॥

जिस प्रकार रथ चाहे हलका भी हो परन्तु भार ले चलने को समर्थ है। उस प्रकार अन्य सवारी नहीं। इसी प्रकार जैसे महाकुलीन नियम से रहने वाले लोग भार को सहने वाले होते हैं, वैसे अन्य साधारण लोग नहीं।३६।

नतन्मित्रं यस्य कोपाद्बिभेति यद्वा मित्रं शङ्कितेनोपचर्यम्। यस्मिन्मित्रेपितरीवाश्वसीत तद्वै मित्रं सङ्गतानीतराणि ॥३७॥

वह मित्र नहीं जिस के क्रोध का डर हो, यद्वा जिस से व्यवहार करने में शङ्का रहे। किन्तु जिस मित्र पर पिता के समान विश्वास हो वही मित्र है शेष सब मेली जोली हैं ॥३७॥

यः कश्चिदप्यसम्बद्धो मित्रभावेन वर्तते।
स एव बन्धुस्तन्मित्रं सा गतिस्तत्परायणम् ३८

जो कोई विना किसी सम्बन्ध के मित्रभाव से वर्त्तव हो

मित्र, वही बन्धु, वही गति और वही परायण है ॥३८॥

चलचित्तस्य वै पुंसो वृद्धाननुपसेवतः ।
पारिप्लवमतेर्नित्यमध्रुवो मित्रसङ्ग्रहः ॥३९॥

चञ्चल चित्त वाले, वृद्धों की सेवा न करने वाले, डांवां डोल बुद्धि वाले पुरुष की मित्रता का संग्रह स्थिर नहीं है ॥ ३९ ॥

चलचित्तमनात्मानमिन्द्रियाणां वशानुगम् ।
अर्थाःसमभिवर्तन्ते हंसाः शुष्कं सरो यथा ।४०।

चञ्चल चित्त, निर्बलात्मा, इन्द्रियाधीन के अर्थ (धनादि) ऐसे दूर होजाते हैं जैसे हंस सूखे जलाशय से ॥४०॥

अकस्मादेव कुप्यन्ति प्रसीदन्त्यनिमित्ततः ।
शीलमेतदसाधूनामभ्रं पारिप्लवं यथा ॥ ४१ ॥

बिना कारण क्रोध करते और बिना कारण प्रसन्न होजाते हैं, यह दुष्टों का शील है, जैसे तितिर बितर बादल ॥४१॥

सत्कृताश्च कृतार्थाश्च मित्राणां न भवन्ति ये।
तान्मृतापि क्रव्यादाः कृतघ्नान्नोपभुञ्जते ॥४२॥

जो मित्रों से सत्कृत और कृतार्थ नहीं, उन कृतघ्नों के (शव) मुर्दों को मृतभक्षी जीव भी नहीं खाते ॥ ४२ ॥

अर्चयेदेव मित्राणि संति वाऽसति वा धने ।
नानर्थयन् प्रजानाति मित्राणां सारफल्गुताम् ४३

चाहे धन हो वा न हो परन्तु मित्रों का सत्कार करे ही, क्योंकि बिना खर्च किये मित्रों की सार नहीं जानी जाती ॥ ४३ ॥

सन्तापाद्भ्रश्यते रूपं सन्तापाद्भ्रश्यते बलम् ।
सन्तापाद्भ्रश्यते ज्ञानं सन्तापाद्व्याधिमृच्छति ॥

(हृदय में जो दुःख रहता है वह सन्ताप कहाता है) सन्ताप से रूप, बल और ज्ञान, क्षीण होते हैं और रोग घेरता है ॥ ४४ ॥

अनवाप्यं च शोकेन शरीरे चोपतप्यते ।
अमित्राश्च प्रहृष्यन्ति मास्म शोके मनः कृथाः ४५

शोक से कुछ प्राप्त भी नहीं होता और शरीर के भीतर दुःख होता है तथा शत्रु प्रसन्न होते हैं इस लिये (हे धृतराष्ट्र !)मन को शोक में मत लगाओ ॥ ४५ ॥

पुनर्नरो म्रियते जायते च पुनर्नरो हीयते वर्धते च। पुनर्नरो याचति याच्यते च पुनर्नरः शोचति शोच्यते च ॥ ४६॥

जन्म मरण बार बार है, हानि वृद्धि बारबार है, मांगना वा देने योग्य बनना बारंबार है, ऐसे ही शोक करना वा शोकास्पद होना बारंबार है ॥ ४६ ॥

सुखं च दुःखं च भावाभवौ च लाभालाभौ मरणं जीवितं च । पर्यायशः सर्वमेते स्पृशन्ति तस्माद्धीरो न च हृष्येन्न शोचेत् ॥ ४७ ॥

सुख दुःख, जन्म मृत्यु, हानि लाभ, मरना जीना ये, सब पारी २ से सब को छूते ही हैं इसलिये धैर्यवान् को हर्ष वा शोक न करना चाहिये ॥ ४७ ॥

चलानि हीमानि षडिन्द्रियाणि तेषां यद्यद्धर्वते यत्र यत्र । ततस्ततःस्रवते बुद्धिरस्य छिद्रोदकुम्भादिव नित्यमम्भः ॥४८॥

ये इन्द्रियां चञ्चल हैं, इन में से जो २ (इन्द्रिय) जिस २ (विषय) में बढ़ती है, वहां २ को इस (जीवात्मा)की बुद्धि

टपकती=क्षीण होती है, जैसे फूटे घड़े से नित्य जल ॥४८॥

धृतराष्ट्र उवाच।

तनुरुद्धः शिखी राजा मिथ्योपचरितो मया।
मन्दानां मम पुत्राणां युद्धेनान्तं करिष्यति ॥४९॥

धृतराष्ट्र बोले—अपने आपे में रोका हुवा अग्नितुल्य राजा (युधिष्ठिर) मैं ने झूंठ बहकाया है इस कारण वह मेरे मूर्ख पुत्रों का युद्ध से नाश करेगा ॥४९॥

नित्योद्विग्नमिदं सर्वं नित्योद्विग्नमिदं मनः।
यत्तत्पदमनुद्विग्नं तन्मे वद महामते ॥५०॥

(इस से) सारा जगत् और अपना यह मन सदा उद्विग्न= घबराया प्रतीत होता है, इस कारण हे महाबुद्धे! ऐसा स्थान बतावो जहां मुझे घबराहट न हो ॥५०॥

विदुर उवाच।

नान्यत्र विद्यातपसोर्नान्यत्रेन्द्रियनिग्रहात्।
नान्यत्र लोभसन्त्यागाच्छान्तिं पश्यामि तेऽनघ ॥

विदुर जी बोले—हे निष्पाप! बिना विद्या और तप के, बिना इन्द्रियों के वश किये, बिना लोभ को त्यागे, मैं

तुम्हारी शान्ति नहीं देखता ॥५१॥

बुद्ध्या भयं प्रणुदति तपसा विन्दते महान्।
गुरुशुश्रूषया ज्ञानं शान्तिं योगेन विन्दति॥५२॥

(मनुष्य) बुद्धि से भय को हटाता, तप से महात्मा बनता है। गुरु की सेवा से ज्ञान को प्राप्त होता और योग से शान्ति को पाता है ॥५२॥

अनाश्रिता दानपुण्यं वेदपुण्यमनाश्रिताः।
रागद्वेषविनिर्मुक्ता विचरन्तीह मोक्षिणः ॥५३॥

दान पुण्य का आश्रय न करने वाले और वेदपाठजन्य पुण्य का आश्रय न पकड़ने वाले भी केवल राग द्वेष से छूटे हुवे ही संसार में मोक्ष को पाये हुवे विचरते हैं ॥५३॥

स्वधीतस्य सुयुद्धस्य सुकृतस्य च कर्मणः।
तपसश्च सुतप्तस्य तस्यान्ते सुखमेधते ॥५४॥

अच्छे प्रकार पढ़े हुवे का, अच्छे युद्ध का, अच्छे प्रकार किये सुकर्म का, और अच्छे प्रकार किये हुवे तप का अन्त में (फल होता है) सुख पूर्वक वृद्धि होती है ॥५४॥

स्वास्तीर्णानि शयनानि प्रशस्ता, न वै भिन्ना जातु

निद्रां लभन्ते । न स्त्रीषु राजन् ! रतिमाप्नुवन्ति, न मागधैःस्तूयमाना न सूतैः ॥५५॥

जो मर्म विन्धे पुरुष हैं उन्हें न तो सुन्दर पलंगों पर कभी नींद आती है, हे राजा ! न उन्हें स्त्रीभोग से सुख होता है, न मागधों और बन्दियों की स्तुति अच्छी लगती है ॥ ५५ ॥

न वै भिन्ना जातु चरन्ति धर्मं न वै सुखं प्राप्नुवन्तीह भिन्नाः । न वै भिन्ना गौरवं प्राप्नुवन्ति न वै भिन्नाः प्रशमं रोचयन्ति ॥५६॥

मर्मविन्धे पुरुष न कभी धर्म करते हैं, न सुख को प्राप्त होते हैं, न बड़ाई को प्राप्त होते हैं, न शान्ति की रुचि करते हैं ॥५६॥

न वै तेषां स्वदते पथ्ययुक्तं योगक्षेमं कल्पते नैव तेषाम् । भिन्नानां वै मनुजेन्द्र ! परायणं न विद्यते किञ्चिदन्यद्विनाशात् ॥५७॥

न उन्हें पथ्ययुक्त भोजन स्वाद लगता है, न उन को धनादि की प्राप्ति=योग और प्राप्त की रक्षा=क्षेम होसक्ता

है, किन्तु हे राजा ! उन को तो नाश के अतिरिक्त कोई गति नहीं ॥५७॥

सम्पन्नं गोषु सम्भाव्यं सम्भाव्यं ब्राह्मणे तपः।
सम्भाव्यं चापलं स्त्रीषु सम्भाव्यं ज्ञातितोभयम्॥५८

गौओं में सम्पत् होना सम्भव है, ब्राह्मण में तप सम्भव है, स्त्रियों में चपलता सम्भव है, ज्ञाति से भय सम्भव है (इन २ में ये २ बातें हों तो सम्भव है आश्चर्य नहीं)

तन्तवः प्यायिता नित्यं तनवो बहुलाः समाः।
बहून्बहुत्वादायासान्सहन्तीत्युपमा सताम्॥५९॥

तृण जोड़े हुवे, सूक्ष्म इकट्ठे हुवे, जिस प्रकार बहुत होने से बहुत से परिश्रमों को सहार सके हैं इसी प्रकार सन्त लोग (भी बड़े होने से बहुत श्रम सह सके हैं) ॥ ५९ ॥

धूमायन्ते व्यपेतानि ज्वलन्ति सहितानि च।
धृतराष्ट्रोल्मुकानीव ज्ञातयो भरतर्षभ! ॥६०॥

हे धृतराष्ट्र! जिस प्रकार इन्धन की टोंमी पृथक् २ हुई धुवां देती हैं और मिली हुई प्रदीप्त होती हैं इसी प्रकार भाई बन्धु लोग (अलग २ रहे, धुएं के समान दुःखदायक और मिले जुले प्रज्वलित अग्नि के समान प्रकाशित होते हैं) ६०

ब्राह्मणेषु च ये शूराः स्त्रीषु ज्ञातिषु गोषु च ॥
वृन्तादिव फलं पक्वं धृतराष्ट्र ! पतन्ति ते।६१॥

हे धृतराष्ट्र! जो ब्राह्मणों, स्त्रियों, बान्धवों और गौओं पर शूरवीरता दिखाते हैं वे ऐसे गिरते हैं जैसे डाल से पका फल ॥ ६१ ॥

महानप्येकजो वृक्षो बलवान्सुप्रतिष्ठितः ॥
प्रसह्य एव वातेन सस्कन्धो मर्दितुं क्षणात्।६२।

एकला वृक्ष चाहे बड़ा, बलवान्, गहरी जड़ वाला, भी हो वह भी वायु से तत्क्षण गुद्दों सहित गिराया जा सक्ता है ॥ ६२ ॥

अथ ये सहिता वृक्षाः सङ्घशः सुप्रतिष्ठिताः ।
ते हि शीघ्रतमान्वातान् सहन्तेऽन्योन्यसंश्रयात्

परन्तु घने वृक्ष एक दूसरे के साथ जमे हुवे हों, वे आपस के सहारे से तीव्रवायुओं को सह लेते हैं ॥ ६३ ॥

एवं मनुष्यमप्येकं गुणैरपि समन्वितम् ।
शक्यं हिंसन्तो मन्यन्ते वायुर्द्रुममिवैकजम्।६४

जिस प्रकार एकले वृक्ष को वायु इसी प्रकार एकले

मनुष्य को चाहे वह गुणों से युक्त भी हो, शत्रु जीत सकने योग्य समझते हैं ॥६४॥

अन्योन्यसमुपष्टम्भादन्योन्योपाश्रयेण च ।
ज्ञातयः सम्प्रवर्धन्ते सरसीवोत्पलान्युत ॥६५॥

एक दूसरे की थांभ और आश्रय से कुटुम्बी बढ़ते हैं जैसे जलाशय में कमल ॥ ६५ ॥

अवध्या ब्राह्मणा गावो ज्ञातयःशिशवःस्त्रियः ।
येषां चान्नानि भुञ्जीत ये च स्युःशरणागताः।६६।

ब्राह्मण गौ कुटुम्बी बालक स्त्री और जिन का अन्न खाते हों वे, और जो शरणागत हों ये, सब अवध्य (न मारने योग्य) हैं ॥ ६६ ॥

न मनुष्ये गुणः कश्चिद्राजन् ! सधनतामृते ।
अनातुरत्वाद्भद्रं ते मृतकल्पा हि रोगिणः॥६७॥

हे राजा ! तुम्हारा भला हो । मनुष्य में धनी होने के अतिरिक्त कोई गुण नहीं माना जाता क्योंकि (धनी) आतुर नहीं होता । (जिन पर धन नहीं) वे रोगी मरे बराबर हैं॥ ६७ ॥

अव्याधिजं कटुकं शीर्षरोगि पापानुबन्धं परुषं तीक्ष्णमुष्णम् । सतां पेयं यन्न पिबन्त्यसन्तः मन्युं महाराज! पिब प्रशाम्य ॥६८॥

जो व्याधि के विना ही उत्पन्न हो जाता, जो कटुक जो शीर्ष रोग वाला, जिस का पीछे लगाना पाप है, जो तीखा है, जो तीव्र तथा गरम है, जिसे सज्जन पी गये हैं, जिसे असज्जन नहीं पीते उस " क्रोध " को पीओ महाराज ! और शान्त हो ॥ ६८ ॥

रोगार्दिता न फलान्याद्रियन्ते न वै लभन्ते विषयेषु तत्त्वम् । दुःखोपेता रोगिणो नित्यमेव न बुध्यन्ते धनभोगान्न सौख्यम् ॥ ६९ ॥

रोगियों को न फल भाते, न विषयों का स्वाद मिलता न धन का भोग होता, न सुख को जानते हैं; किन्तु सदा दुःखी ही रहते हैं ॥६९ ॥

पुरा ह्युक्तं नाकरोस्त्वं वचो मे द्यूते जितां द्रौपदीं प्रेक्ष्य राजन् । दुर्योधनं वारयेत्यक्षवत्यां कितवत्वं पण्डिता वर्जयन्ति ॥७०॥

मैं ने तुम से पहले ही कहा था कि जुवे (द्यूत) में जीती हुई द्रौपदी को देखकर बाज़ी में दुर्योधन को रोको, परन्तु तुमने न माना। हे राजा! पण्डित लोग छल (जुवे) को वर्जते हैं ॥ ७० ॥

न तद्बलं यन्मृदुना विरुध्यते सूक्ष्मो धर्मस्तरसा सेवितव्यः । प्रध्वंसिनी क्रूरसमाहिता श्री-र्मृदुप्रौढा गच्छति पुत्रपौत्रान् ॥७१॥

वह बल नहीं है जो कोमल से विरोध करे, धर्म सूक्ष्म है उसे वेग से सेवना चाहिये। क्रूर मनुष्य की कमाई लक्ष्मी नष्ट होजाती और कोमल की दृढ होकर पुत्र पौत्रों तक जाती है ॥ ७१ ॥

धार्तराष्ट्राःपाण्डवान्पालयन्तु पाण्डोः सुतास्तव पुत्रांश्च पान्तु । एकारिमित्राः कुरवो ह्येककार्या जीवन्तु राजन्सुखिनः समृद्धाः ॥७२॥

हे राजा ! तुम्हारे पुत्र, पाण्डु पुत्रों की और पाण्डु पुत्र, तुम्हारे पुत्रों की रक्षा करें, सब के सब कौरव पाण्डव शत्रुमित्र समान रक्खें, समान ही काम करें, तो सुखी हों फूलें फलें और जीवें ॥ ७२ ॥

मेढीभूतः कौरवाणां त्वमद्य त्वय्याधीनं कुरुकु-
लमाजमीढ!। पार्थान्बालान्वनवासप्रतप्तान्गो-
पायस्व स्वं यशस्तात रक्षन् ॥७३॥

हे तात! धृतराष्ट्र! तुम कुरुकुल की मेढ हो, कुरुकुल तुम्हारे आधीन है, इसलिये बालक पाण्डवों की, जो वनवास से दुःखी हैं, रक्षा करो और अपना यश रक्खो ॥ ७३ ॥

सन्धत्स्व त्वं कौरव! पाण्डुपुत्रैर्मातेऽन्तरं रिपवः
प्रार्थयन्तु । सत्ये स्थितास्ते नरदेव! सर्वे दुर्यो-
धनं स्थापय त्वं नरेन्द्र! ॥७४॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि पञ्चत्रिंशो-
ऽध्यायः ॥३५॥ प्रजागरपर्वणि विदुरहित-
वाक्ये च चतुर्थः ॥ ४ ॥

हे कुरुवंशी राजा! राजेन्द्र! तुम पाण्डवों से मेल करलो, तुम्हारे शत्रु अवसर न पावें, क्योंकि वे सब (पाण्डव) सत्य पर स्थित हैं, तुम दुर्योधन को सम्भालो ॥ ७४ ॥

यह महाभारत उद्योगपर्व में पैंतीसवां ३५ अध्याय हुवा और प्रजागरपर्व विदुरहितवाक्य में चतुर्थ ॥ ४ ॥

विदुर उवाच ।

सप्तदशेमान् राजेन्द्र मनुःस्वायम्भुवोऽब्रवीत् ।
वैचित्र वीर्य! पुरुषानाकाशं मुष्टिभिर्घ्नतः ॥१॥

विदुर जी बोले कि–हेराजा! विचित्र वीर्य के पुत्र! स्वायम्भुव मनुने इन १७ मनुष्यों को आकाश में घूंसे मारनेवाला कहा है ॥१॥

दानवेन्द्रस्य च धनुरनाम्यं नमतोऽब्रवीत् ।
अथो मरीचिनः पादानग्राह्यान् गृह्णतस्तथा ॥२॥

और दानवेन्द्र के नहीं नमनेवाले धनुष को नमाने वाले तथा मरीचि के न छुए जाने वाले पांवों के पकड़नेवाले (अर्थात् उलटा करने वाले) कहा है ॥२॥

यश्चाशिष्यं शास्तिवै यश्च तुष्येदयश्चातिवेलं भजते हिषन्तम्। स्त्रियश्च यो रक्षति भद्रमश्नुते यश्चायाच्यं याचते कत्थते वा ॥ ३ ॥

(वे १७ ये हैं कि–) १–जो शिक्षा न देने योग्य को शिष्य बनाता है। २–जो कुसमय प्रसन्न होता है। ३–जो शत्रु का सेवन करता है। ४–जो स्त्रियों की रक्षा कर सुख

भोगता है। ५–जो न मांगने योग्य से मांगता है। ६–वा उस की बड़ाई करता है ॥ ३ ॥

यश्चाभिजातः प्रकरोत्यकार्यं यश्चाबलो बलिना नित्यवैरी। अश्रद्दधानाय च यो ब्रवीति यश्चाकाम्यं कामयते नरेन्द्र ! ॥४॥

७–जो कुलीन होकर कुकर्म करता है। ८–जो निर्बल हो परन्तु नित्य बलवानों से वैर करे। ९–जो अश्रद्दालु को उपदेश करे। १०–जो न चाहने योग्य को चाहे ॥४॥

वध्वाऽवहासं श्वशुरो मन्यते यो वध्वा वसन्नमर्यो मानकामः। परक्षेत्रे निर्वपति यश्च बीजं स्त्रियं च यः परिवदतेऽतिवेलम् ॥५॥

हे राजा! ११–जो श्वशुर पुत्र की स्त्री से हंसी करे। १२–जो पुत्र की स्त्री के साथ रहता हुआ प्रतिष्ठा चाहे। १३ जो पराये खेत में बीज बोवे। १४–जो कुसमय स्त्री का तिरस्कार करे ॥ ५ ॥

यश्चापि लब्ध्वा न स्मरामीति वादी दत्त्वा च यः कत्थति याच्यमानः। यश्चासतः सत्त्वमुपा-

नयीत एतान्नयन्ति निरयं पाशहस्ताः ॥६॥

१५-जो लेकर कहे कि मुझे तो याद नहीं । १६-मांगने पर देकर अपनी बड़ाई करे । १७-और जो न हुवे को हुआ माने । इन सब को हाथ में फांसी वाले (यमदूत) नरक को लेजाते हैं ॥ ६ ॥

यस्मिन् यथा वर्तते यो मनुष्यस्तस्मिंस्तथा वर्तितव्यं सधर्मः । मायाचारो मायया वर्तितव्यः साध्वाचारः साधुना प्रत्युपेयः ॥ ७ ॥

जिस में जैसा जो मनुष्य वर्त्ताव करे उस में वैसा ही वर्त्तना चाहिये (अर्थात्) छलिया के साथ छल से वर्त्तना चाहिये और साधु के साथ साधुता वर्त्तनी चाहिये॥ ७ ॥

जरा रूपं हरति हि धैर्यमाशा मृत्युः प्राणान्धर्मचर्यामसूया । कामो ह्रीयं वृत्तमनार्यसेवा क्रोधः श्रियं सर्वमेवाभिमानः ॥ ८ ॥

बुढापा रूप को हरता है, धैर्य को आशा, प्राणों को मृत्यु, धर्माचरण को चुगली, लज्जा को काम, व्यवहार को नीच की सेवा, शोभा व लक्ष्मी को क्रोध हरता है

और अभिमान सब ही को (हरता है) ॥८॥

धृतराष्ट्र उवाच ।

शतायुरुक्तः पुरुषः सर्ववेदेषु वै यदा ।
नाप्नोत्यथ च तत्सर्वमायुः केनेह हेतुना ॥ ९ ॥

धृतराष्ट्र बोले कि—सब वेदों में जब कि मनुष्य की १०० वर्ष आयु कही है तो फिर किस कारण उस सब आयु को नहीं प्राप्त होता ॥ ९ ॥

विदुर उवाच

अतिमानोऽतिवादश्च तथाऽत्यागो नराधिप ।
क्रोधश्चात्मविधित्सा च मित्रद्रोहश्च तानि षट्॥१०

विदुरने उत्तर दिया कि—अति घमण्ड, अतिबोलना, तथा दान न देना, क्रोध, और मेरा ही पेट भरे यह इच्छा, और मित्रद्रोह ये छः (हुवे) हे राजा ! ॥१०॥

एत एवासयस्तीक्ष्णाः कृन्तन्त्यायूंषि देहिनाम् ।
एतानि मानवान्घ्नन्ति न मृत्युर्भद्रमस्तुते॥११॥

तेरा भला हो, ये ही छः, पैनी तलवारें हैं जो प्राणियों की आयु का छेदन करती हैं, मृत्यु नहीं किन्तु ये

मनुष्यों को मारती हैं ॥ ११ ॥

वैश्यवत्तस्यैति यो दारान् यश्चापि गुरुतल्पगः ।
पतीपतिर्द्विजो यश्च पानपश्चैव भारत ! ॥१२॥

जो विश्वास मानने वाले की वा गुरु की स्त्री से गमन रे, जो द्विज होकर वेश्या वा शूद्रा से गमन करे, वा दिरा पीवे, हे धृतराष्ट्र ! ॥ १२ ॥

ादेशकृद्वृत्तिहन्ता द्विजानां प्रेषकश्च यः ।
रणागतहा चैव सर्वे ब्रह्महभिः समाः ।
एतैः समेत्य कर्त्तव्यं प्रायश्चित्तमिति श्रुतिः ।१३।

जो आज्ञा चलानेवाला जीविका का नाश करे, जो द्विजों से सेवा करावे, जो शरणागत को मारे, ये सब ब्रह्महत्यारे के समान हैं, इन के साथ रह कर प्रायश्चित्त करना चाहिये ऐसा सुनते हैं वा वेद कहता है ॥ १३ ॥

गृहीतवाक्यो नयविद्दान्यः शेषान्नभोक्ता ह्यवि-
हिंसकश्च । नानर्थकृत्याकुलितः कृतज्ञः सत्यो
मृदुः स्वर्गमुपैति विद्वान् ॥ १४ ॥

जो विद्वान् शिक्षित हो, नीति का जानने वाला,

दाता, पञ्चयज्ञ करके भोजन करने वाला, हिंसा न करने वाला, अनर्थ न करने वाला और उस से आकुल न होने वाला, किये (अहसान) का मानने वाला, सत्यवादी, और कोमल हो वह स्वर्ग को पाता है ॥ १४ ॥

सुलभाः पुरुषा राजन्सततं प्रियवादिनः ।
अप्रियस्य तु पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः ।१५।

हे राजा ! मीठा बोलने वाले मनुष्य सदा बहुत मिलते हैं परन्तु कडुवा और हितकारक वचन का बोलने तथा सुनने वाला भी दुर्लभ है ॥ १५ ॥

यो हि धर्मं समाश्रित्य हित्वा भर्तुः प्रियाप्रिये ।
अप्रियाण्याह पथ्यानि तेन राजा सहायवान् १६

जो धर्म को पकड़ कर स्वामी के प्रिय अप्रिय को छोड़ कर (उस की परवा न करके) कटु परन्तु हितकारक वचनों को कहता है, वह राजा (स्वामी) का सहायक है॥

त्यजेत्कुलार्थे पुरुषं ग्रामस्यार्थे कुलं त्यजेत् ।
ग्रामं जनपदस्यार्थे आत्मार्थे पृथिवीं त्यजेत् १७

कुल के लिये १ पुरुष को छोड़े देवे, ग्राम के लिये कुल को छोड़ देवे, जनपद, (ज़िले) के लिये ग्राम को छोड़ दे,

अपने लिये पृथिवी भर को छोड़ देवे ॥१७॥

आपदर्थे धनं रक्षेद्धारानुक्षेद्धनैरपि ।
आत्मानं सततं रक्षेद्दारैरपि धनैरपि ॥ १८ ॥

आपत्ति लिये धन की रक्षा करे, धन छोड़ कर स्त्रियों की रक्षा करे, परन्तु स्त्री तथा धन सब छोड़ अपनी रक्षा करे ॥ १८ ॥

द्यूतमेतत्पुराकल्पे दृष्टं वैरकरं नृणाम् ।
तस्माद्द्यूतं न सेवेत हास्यार्थमपि बुद्धिमान् १९

यह जो जुवा है यह प्राचीन काल में भी मनुष्यों में वैर करने वाला देखा गया है । इसलिये बुद्धिमान् हंसी के लिये भी जुआ का सेवन न करे ॥१९॥

उक्तं मया द्यूतकालेऽपि राजन्नेदं युक्तं वचनं प्रातिपेयम् । तदौषधं पथ्यमिवातुरस्य न रोचते तव वैचित्रवीर्य ! ॥ २० ॥

हे विचित्रवीर्य के पुत्र ! राजा ! मैंने जुवे के समय भी विरुद्ध वचन कहा था कि यह उचित नहीं है । तब तुम को वह ऐसे न भाया जैसा रोगी को पथ्य औषध २०

काकैरिमांस्त्वं बलवद्भिर्बर्हान्मयूरान्पराजयेथाः पाण्डवान्धार्तराष्ट्रैः। हित्वा सिंहान्क्रोष्टकान्गूहमानः प्राप्ते काले शोचिता त्वं नरेन्द्र! ॥ २१ ॥

हे राजा! तुम इन मयूर के पंख से उत्तम गुणधारी पाण्डवों को अपने पुत्रों से (जो काक हैं) पराजित करोगे तो सिंहों को छोड़ गीदड़ों की रक्षा करते हुवे समय आये पर शोक करोगे ॥ २१ ॥

यस्तात न क्रुध्यति सर्वकालं भृत्यस्य भक्तस्य हिते रतस्य। तस्मिन्भृत्या भर्तरि विश्वसन्ति न चैनमापत्सु परित्यजन्ति ॥ २२ ॥

हे तात! जो अपने हित में लगे भक्त भृत्य पर क्रोध नहीं करता, उस स्वामी पर भृत्य लोग विश्वास करते हैं तथा आपत्काल में उसे नहीं छोड़ते ॥२२॥

न भृत्यानां वृत्तिसंरोधनेन राज्यं धनं सञ्जिघृक्षेदपूर्वम्। त्यजन्ति ह्येनं वञ्चिता वै विरुद्धाः स्निग्धा ह्यमात्याः परिहीनभोगाः ॥ २३ ॥

सेवकों की जीविका के रुकाव से अपूर्व राज वा धन को ग्रहण करने की इच्छा न करे। क्योंकि जब मन्त्री लोग भोगरहित होजाते हैं तो वे ठगे हुवे (भीतर से) विरुद्ध, (बाहर से) प्यार करने वाले इसे (राजा को) त्याग देते हैं ॥ २३ ॥

कृत्यानि पूर्वं परिसङ्ख्याय सर्वाण्यायव्यये चानुरूपां च वृत्तिम्। सङ्गृह्णीयादनुरूपान्सहायान्, सहायसाध्यानि हि दुष्कराणि ॥ २४ ॥

प्रथम सब कामों को गिन कर आय व्यय और अनुकूल जीविका को देख कर फिर अनुकूल सहायकों का सङ्ग्रह करे क्योंकि कठिन कार्य भी सहाय से सिद्ध हो सकते हैं ॥२४॥

अभिप्रायं यो विदित्वा तु भर्तुः सर्वाणि कार्याणि करोत्यतन्द्री। वक्ता हितानामनुरक्त आर्यः, शक्तिज्ञ आत्मेव हि सोऽनुकम्प्यः ॥ २५ ॥

जो सेवक स्वामी के मन को जान कर निरालस सब कामों को करता है और हित की कहता तथा भक्त और भला मानुष और सामर्थ्य का ऐसा जानने वाला जैसा

आत्मा, वह (सेवक) दयापात्र है ॥२५॥

वाक्यं तु यो नाद्रियतेऽनुशिष्टः, प्रत्याह यश्चापि नियुज्यमानः । प्रज्ञाभिमानी प्रतिकूलवादी, त्याज्यः स तादृक्त्वरयैव भृत्यः ॥२६॥

जो शिक्षा किया हुवा (शिक्षक के) वाक्य का आदर नहीं करता, और जिसे आज्ञा दीजावे तो उत्तर देने लगे, बुद्धि का अभिमानी, विरुद्ध बोलने वाला, ऐसा सेवक तत्काल निकाल देना चाहिये ॥ २६ ॥

अस्तब्धमक्लीबमदीर्घसूत्रं सानुक्रोशं श्लक्ष्णमहार्यमन्यैः । अरोगजातीयमुदारवाक्यं दूतं वदन्त्यष्टगुणोपपन्नम् ॥२७॥

जो आठ गुणों से युक्त हो उस को दूत कहते हैं, १–ढीठ न हो, २–नपुंसक न हो ३–शिथिल न हो, ४–दयायुक्त हो, ५ चिकनी चुपड़ी बातें जानता हो, ६–जो शत्रुओं से मिल जाने योग्य न हो ७–जिस की जाति में कोई रोग प्रवृत्त न हो, ८–बोलने में उदार हो ॥ २७ ॥

न विश्वासाज्जातु परस्य गेहे गच्छेन्नरश्चेतयानो

विकाले । न चत्वरे निशि तिष्ठेन्निगूढो न राजकाम्यां योषितं प्रार्थयीत ॥२८॥

बुद्धिमान् पुरुष, विश्वास से शत्रु के घर में न जावे, कुसमय रात्रि में चौराहे पर न ठहरे, छुप कर भी राजा की चाही हुई स्त्री को न चाहे ॥ २८ ॥

न निह्नवं मन्त्रगतस्य गच्छेत्संसृष्टमन्त्रस्य कुसङ्गतस्य । न च ब्रूयान्नाश्वसिमि त्वयीति सकारणं व्यपदेशं तु कुर्यात् ॥२९॥

सलाही के बहकाने में न आवे जो सलाही प्रथम सलाह में रहा हो और फिर टूट गया हो, तो उस से यह भी न कहे कि मैं तुझ पर भरोसा (विश्वास) नहीं करता, किन्तु कारण सहित बहाना करदे ॥ २९ ॥

घृणी राजा पुंश्चली राजभृत्यः पुत्रो भ्राता विधवा बालपुत्रा । सेनाजीवी चाहृतभूतिरेव व्यवहारेषु वर्जनीयाः स्युरेते ॥३०॥

इतनों से व्यवहार न करे ? जिसे अति दया हो, २–जो राजा हो, ३–वेश्या, ४–राजकर्मचारी ५–पुत्र, ६–

भ्राता, ७–जिस का पुत्र बालक है उस विधवा से, ८–जो सेना से जीविका करता हो, ९–जिस की सम्पत्ति छीन ली हो (इन से लेन देन करने में किसी न किसी प्रकार का बखेड़ा वा अपयश सम्भव है) ॥ ३० ॥

अष्टौ गुणाः पुरुषं दीपयन्ति प्रज्ञा च कौल्यं च श्रुतं दमश्च । पराक्रमश्चाबहुभाषिता च दानं यथाशक्ति कृतज्ञता च ॥३१॥

आठ गुण मनुष्य को भूषित करते हैं, १–बुद्धि २–कुलीनता ३–वेदादिशास्त्रपाठ ४–इन्द्रियदमन ५–पराक्रम ६–बहुत न बोलना ७–यथाशक्ति दान ८–और कृतज्ञता ॥ ३१ ॥

एतान्गुणांस्तात ! महानुभावानेको गुणः संश्रयते प्रसह्य । राजा यदा सत्कुरुते मनुष्यं सर्वान्गुणानेष गुणो बिभर्त्ति ॥३२॥

हे तात ! इन बड़े प्रभावशाली गुणों को एक गुण दबा लेता है (वह यह है कि–) जब मनुष्य का राजा आदर करता है तब यह गुण अन्य सब गुणों को धारता है ॥३२॥

गुणा दश स्नानशीलं भजन्ते बलं रूपं स्वरवर्ण प्रशुद्धिः । स्पर्शश्च गन्धश्च विशुद्धता च श्रीः सौकुमार्यं प्रवराश्च नार्यः ॥३३॥

स्नानशील को १० लाभ होते हैं–१–बल २–रूप ३–स्वर और रंगत की शुद्धि ४–स्पर्श ५–गन्ध, ६–स्वच्छता ७–शोभा ८–सुकुमारता (नाजुकपन) ९–श्रेष्ठ स्त्रियां ॥ ३३ ॥

गुणाश्च षण्मितभुक्तं भजन्ते आरोग्यमायुश्च बलं सुखं च। अनाविलं चास्य भवत्यपत्यं न चैनमाद्यून इति क्षिपन्ति ॥३४॥

जो मित भोजन करता है उसे छः लाभ होते हैं–१–आरोग्य २–आयु ३–बल ४–सुख ५–सन्तान की निर्दोषता ६–और न उसे कोई पेटभरू कहते हैं ॥ ३४ ॥

अकर्मशीलं च महाशनं च लोकद्विष्टं बहुमायं नृशंसम्। अदेशकालज्ञमनिष्टवेषमेतान्गृहे न प्रतिवासयेत ॥३५॥

इतनों को घर में न बसावे १–निकम्मे को २–बहुभोजी

को ३–संसार से शत्रुता रखने वाले को ४–अतिढलिया को ५–निन्दित को ६–देशकाल के न जानने वाले को ७–बुरे वेष वाले को ॥ ३५ ॥

कदर्यमाक्रोशकमश्रुतं च वनौकसं धूर्तममान्य-मानिनम् । निष्ठुरिगं कृतवैरं कृतघ्नमेतान्भृशा-र्तोऽपि न जातु याचेत् ॥३६॥

कृपण स्वभाववाले, गाली बकने वाले, कुपढ, जंगली, धूर्त्त, अमान्य के मानने वाले, निर्दय, वैरी, कृतघ्न, इतनों से अत्यन्त दुःखित हुवा भी न मांगे ॥ ३६ ॥

सङ्क्लिष्टकर्माणमतिप्रमादं नित्यानृतं चादृढभ-क्तिकं च । विसृष्टरागं पटुमानिनं चाप्येतान्न से-वेत नराधमान्षट् ॥३७॥

सरखने, अति प्रमादी, सदा झूंठ बोलने वाले, चल भक्ति वाले, प्रीतिरहित, अपने को चतुर मानने वाले, इन छः नराधमों की सेवा न करे ॥ ३७ ॥

सहायबन्धना ह्यर्थाः सहायाश्चार्थबन्धनाः ।
अन्योन्यबन्धनावेतौ विनान्योन्यं न सिध्यतः३८

सहाय का बन्धन अर्थ (मतलब) है और अर्थ का बन्धन सहाय है। ये दोनों आपस में बिना एक दूसरे के नहीं सधते ॥ ३८ ॥

उत्पाद्य पुत्राननृणांश्च कृत्वा वृत्तिं च तेभ्योऽनुविधाय काञ्चित्। स्थानेकुमारीः प्रतिपाद्य सर्वा अरण्यसंस्थोऽथ मुनिर्बुभूषेत् ॥३९॥

पुत्रों को उत्पन्न करके और ऋण चुकाकर, और उन को कोई जीविका के साथ लगाके, तथा कन्याओं का उचित स्थान में विवाह करके फिर मुनि वानप्रस्थ होना चाहे।३९।

हितं यत्सर्वभूतानामात्मनश्च सुखावहम्।
तत्कुर्यादीश्वरे ह्येतन्मूलं सर्वार्थसिद्धये ॥४०॥

जो सर्वप्राणियों का हित और अपने को सुख पहुंचाने वाले काम हों उसे ईश्वर के भरोसे करे, यही सर्वार्थ सिद्धि के लिये मूल है ॥ ४० ॥

वृद्धिः प्रभावस्तेजश्च सत्त्वमुत्थानमेव च।
व्यवसायश्च यस्य स्यात्तस्याऽवृत्तिभयं कुतः ४१

बुद्धि प्रभाव तेज बल फुरती और हिम्मत जिस के हों

उसे जीविका न रहने का भय क्यों ॥ ४१ ॥

पश्य दोषान्पाण्डवैर्विग्रहे त्वं यत्र व्यथेयुरपिदेवाः सशक्राः । पुत्रैर्वैरं नित्यमुद्विग्नवासो यशःप्रणाशो द्विषतां च हर्षः ॥४२॥

(हे राजा !) तू पाण्डवों से लड़ाई करने में इतने दोषों को देख जिस में इन्द्र सहित देवता भी घबरा जावें–१–पुत्रों से वैर २–नित्य घबराहट में रहना ३–यश का नाश ४–शत्रुवों को हर्ष ॥ ४२ ॥

भीष्मस्य कोपस्तव चैवेन्द्रकल्प ! द्रोणस्य राज्ञश्च युधिष्ठिरस्य । उत्सादयेल्लोकमिमं प्रवृद्धः श्वेतो ग्रहस्तिर्यगिवापतन्खे ॥४३॥

५–और हे इन्द्रकल्प ! भीष्म का कोप ६–तुम्हारा कोप ७–द्रोण का कोप ८–और राजा युधिष्ठिर का कोप (ये सब बात) इस संसार को ऐसे उथल पुथल कर देंगी जैसे आकाश में तिरछा पड़ता हुआ श्वेतग्रह ॥ ४३ ॥

तव पुत्रशतं चैव कर्णः पञ्च च पाण्डवाः । पृथिवीमनुशासेयुरखिलां सागराम्बराम् ॥४४॥

(इस लिये ऐसा करो जिस से) तुम्हारे १०० पुत्र, कर्ण और ५ पाण्डव ये सब समुद्रवेष्टित (समस्त) पृथिवी का राज्य करें ॥४४॥

धार्तराष्ट्रा वनं राजन्! व्याघ्राः पाण्डुसुता मताः।
मा वनं छिन्धि सव्याघ्रं मा व्याघ्रा नीनशन्वनात् ४५

हे राजा! तुम्हारे पुत्र वन हैं और पाण्डव व्याघ्र हैं, तुम व्याघ्र सहित वन को मत काटो न वन से व्याघ्रों का नाश हो (ऐसा करो) ॥ ४५ ॥

न स्याद्वनमृते व्याघ्रान् व्याघ्रा न स्युर्ऋते वनम्।
वनं हि रक्ष्यते व्याघ्रैर्व्याघ्रान्रक्षति काननम् ४६

न तो व्याघ्रों के विना वन, न वन के विना व्याघ्र रह सके हैं किन्तु वन व्याघ्रों की और व्याघ्र वन की रक्षा करते हैं ॥ ४६ ॥

न तथेच्छन्ति कल्याणान् परेषां वेदितुं गुणान्।
यथैषां ज्ञातुमिच्छन्ति नैर्गुण्यं पापचेतसः ॥४७॥

पापी मन वाले, दूसरों के सुखदायक गुणों को वैसे नहीं जानना चाहते जैसे इन की निर्गुणता को जानना चाहते हैं ॥ ४७ ॥

अर्थसिद्धिं परामिच्छन् धर्ममेवादितश्चरेत् ।
न हि धर्मादपैत्यर्थः स्वर्गलोकादिवामृतम् ४८

जो बड़ी भारी अर्थसिद्धि चाहे वह आरम्भ से धर्म ही करे क्योंकि धर्म से अर्थ ऐसे दूर नहीं होता जैसे स्वर्ग से अमृत ॥ ४८ ॥

यस्यात्मा विरतः पापात् कल्याणे च निवेशितः।
तेन सर्वमिदं बुद्धं प्रकृतिर्विकृतिश्च या ॥४९॥

जिसका मन पाप से हटा और पुण्य में लगा उसने (जानो) यह सब समझ लिया जो कि प्रकृति और विकृति है ॥ ४९ ॥

यो धर्ममर्थं कामं च यथाकालं निषेवते ।
धर्मार्थकामसंयोगं सोऽमुत्रेह च विन्दति ॥५०॥

जो अपने २ समय पर धर्म अर्थ और काम को सेवन करता है वह इस लोक तथा परलोक में धर्म अर्थ काम के संयोग को प्राप्त होता है ॥ ५० ॥

सन्नियच्छति यो वेगमुत्थितं क्रोधहर्षयोः ।
स श्रियो भाजनं राजन्! यश्चापत्सु न मुह्यति ५१

हे राजा ! जो क्रोध और हर्ष के उठते वेगको रोकता है और जो आपत्तियों में घबराता नहीं, वह लक्ष्मी का पात्र बनता है ॥ ५१ ॥

बलं पञ्चविधं नित्यं पुरुषाणां निबोध मे ।
यत्तु बाहुबलं नाम कनिष्ठं बलमुच्यते ॥५२॥

मुझ से सुनिये कि मनुष्यों का बल पांच प्रकार का है १–जो बाहु का बल है वह नीच बल है ॥५२॥

अमात्यलाभो भद्रं ते द्वितीयं बलमुच्यते ।
तृतीयं धनलाभं तु बलमाहुर्मनीषिणः ॥५३॥

२–सलाह अच्छी देनेवालों का लाभ द्वितीय बल कहाता है ३–तृतीय धन का लाभ बुद्धिमानों ने बल कहा है ॥५३॥

यत्त्वस्य सहजं राजन् ! पितृपैतामहं बलम् ।
अभिजातबलं नाम तच्चतुर्थं बलं स्मृतम् ।५४।

४–हेराजा ! और जो इस का साथ जन्मा बल पिता पितामह से चला आता है वह "अभिजात" नाम का चतुर्थ बल माना है ॥ ५४ ॥

येन त्वेतानि सर्वाणि सङ्गृहीतानि भारत ! ।

यद्बलानां बलं श्रेष्ठं तत्प्रज्ञाबलमुच्यते॥५५॥

परन्तु जिस से यह सब बल इकट्ठे होते हैं वह बलों में श्रेष्ठ बल ५-बुद्धिबल कहाता है ॥ ५५ ॥

महते योपकाराय नरस्य प्रभवेन्नरः ।
तेन वैरं समासज्य दूरस्थोस्मीति नाश्वसेत्५६

जो मनुष्य, मनुष्य का बहुत बड़ा उपकार कर सकता है, उस के साथ वैर बान्धकर यह न विश्वास करे कि "दूर हूं" ॥ ५६ ॥

स्त्रीषु राजसु सर्पेषु स्वाध्यायप्रभुशत्रुषु ।
भोगेष्वायुषि विश्वासं कः प्राज्ञः कर्तुमर्हति५७

कौन बुद्धिमान् है जो स्त्री, राजा, सर्प, स्वाध्याय, प्रभु, शत्रु, भोग, आयु, इन में विश्वास कर सकता है ? (अर्थात् कोई नहीं क्योंकि थोड़ा भी ध्यान छोड़ने से यह विपरीत होजाते हैं) ॥५७॥

प्रज्ञाशरेणाभिहतस्य जन्तोश्चिकित्सकाः सन्ति न चौषधानि । न होममन्त्रा न च मङ्गलानि नाथर्वणा नाप्यगदाः सुसिद्धाः ॥५८॥

बुद्धिरूप बाण से मारे हुवे प्राणी की न औषध हैं, न वैद्य, न होम के मन्त्र, न शांति पाठादि, न अथर्व में अगद (तन्त्र) सिद्ध होसकते हैं। (अर्थात् और की क्या चली है, अथर्ववेद में लिखे रोगनिवारणोपाय भी काम नहीं देसकते) ॥५८॥

सर्पश्चाग्निश्च सिंहश्च कुलपुत्रश्च भारत ! ।
नावज्ञेया मनुष्येण सर्वे ह्येतेऽतितेजसः ॥५९॥

सर्प और अग्नि और सिंह और कुलीनपुत्र इन की मनुष्य को अवज्ञा न करनी चाहिये क्योंकि हे भारत ! ये सब ही अत्यन्त तेजस्वी हैं ॥५९॥

अग्निस्तेजो महल्लोके गूढस्तिष्ठति दारुषु ।
न चोपयुङ्क्ते तद्दारु यावन्नोद्दीप्यते परैः ॥६०॥

बड़ा तेजवाला अग्नि छिपा हुआ सब काष्ठों में रहता है परन्तु उस काष्ठ को नहीं भस्म करता, जब तक कि कोई उसे सुलगावे नहीं ॥ (अर्थात्) तेजस्वीलोग अपने आप किसी को कुछ नहीं कहते परन्तु कोई छेड़े तो भस्म करदेते हैं ॥ ६० ॥

स एव खलु दारुभ्यो यदा निर्मथ्य दीप्यते ।
तदारु च वनं चान्यान्निर्दहत्याशु तेजसा ॥६१॥

परन्तु वही अग्नि जब काष्ठों से मथ कर सुलगाया जाता है तो उस काष्ठ को और अन्य वन को तत्काल तेज से फूंक देता है ॥ ६१ ॥

एवमेव कुले जाताः पावकोपमतेजसः ।
क्षमावन्तो निराकाराः काष्ठेऽग्निरिव शेरते ।६२।

इसी प्रकार कुलीन (पुरुष) अग्नि के समान तेज वाले, क्षमावान्, देखने में शान्त, काष्ठ में अग्नि के समान (छिपे) रहते हैं ॥ ६२ ॥

त्वं सपुत्रो लतावर्मा शालाः पाण्डुसुता मताः ।
न लता वर्धते जातु महाद्रुममनाश्रिता ॥६३॥

तुम पुत्रों सहित लता (बल्ली) के समान हो, पाण्डव शाल के वृक्ष माने जाते हैं, बड़े वृक्ष के आश्रय बिना लता कभी नहीं बढ़ सकती ॥६३॥

वनं राजंस्तव पुत्रोऽम्बिकये ! सिंहान्वने पाण्डवांस्तातविद्धि । सिंहैर्विहीनं हि वनं विनश्येत्

सिंहा विनश्येयुर्ऋते वनेन ॥६४॥

इति श्रीमहाभारतेउद्योगपर्वाणि षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥३६॥ विदुरहितवाक्ये प्रजागरपर्वणि च पञ्चमोऽध्यायः ॥५॥

हे अम्बिका के पुत्र ! राजा ! तेरे पुत्र वन हैं उस वन में पाण्डवों को सिंह जानो, सिंहों से रहित वन नष्ट होगा और वन के बिना सिंह नष्ट होंगे ॥६४॥

यह महाभारत उद्योग पर्व में छत्तीसवां ३६ और विदुर के हितकारक वाक्यरूप प्रजागर पर्व में

पञ्चम अध्याय हुआ ॥५॥

विदुर उवाच ॥

ऊर्ध्वं प्राणा ह्युत्क्रामन्ति यूनः स्थविर आयति।
प्रत्युत्थानाभिवादाभ्यां पुनस्तान्प्रतिपद्यते ॥१॥

जब कि वृद्ध आता हो तब युवा के प्राण ऊपर को चलते हैं (इस से) प्रत्युत्थान [ताज़ीम] और अभिवादन से उन प्राणों को फिर से प्राप्त होता है ॥१॥

पीठं दत्वा साधवेऽभ्यागताय आनीयापः परिनिर्णिज्य पादौ। सुखं पृष्ट्वा प्रतिवेद्यात्मसंस्थां ततोदद्यादन्नमवेक्ष्य धीरः ॥ २ ॥

धीर पुरुष को उचित है कि अभ्यागत साधु को आसन देकर, जल लाकर, पांव धोकर, सुख पूंछकर, मन की अवस्था पूंछकर तब विचारपूर्वक अन्न देवे ॥२॥

यस्योदकं मधुपर्कं च गां च न मन्त्रवित्प्रतिगृह्णाति गेहे। लोभाद्भयादथ कार्पण्यतो वा तस्यानर्थं जीवितमाहुरार्याः ॥ ३ ॥

जिस के घर पर वेदज्ञ जल मधुपर्क और गौ नहीं पाता, चाहे लोभ से वा भय अथवा कृपणता से, आर्य्य लोग उस के जीवन को व्यर्थ कहते हैं ॥३॥

चिकित्सकः शल्यकर्तावकीर्णी स्तेनः क्रूरोमद्यपो भ्रूणहा च। सेनाजीवी श्रुतिविक्रायकश्च भृशं प्रियोप्यतिथिर्नोदकार्हः ॥ ४ ॥

वैद्य, जरांह, ब्रह्मचर्य्य का त्यागी, चोर, क्रूर, मदिरा

धोने वाला, गर्भहत्याकारक, सेना से जीविका करने वाला, वेद का बिकवाने वाला, (इन में का) अतिप्रिय भी अतिथि जलादि के योग्य नहीं (इन में कोई निन्दित होने और कोई आतिथ्य की आवश्यकता रहित होने से वर्जित हैं) ॥४॥

अविक्रेयं लवणंपक्वमन्नं दधिक्षीरं मधु तैलं घृतं च। तिला मांसं फलमूलानि शाकं रक्तं वासः सर्वगन्धा गुडाश्च ॥५॥

लवण पक्वान्न दधि दुग्ध शहद तैल घृत तिल मांस फल मूल शाक रङ्गीनवस्त्र सबप्रकारगन्ध और गुड़ बेचने योग्य नहीं (यदि इन सब का व्यापार बन्द हो तो संसार की यात्रा चलनी असम्भव है, परन्तु व्यापारियों के अतिरिक्त अन्य सामान्य लोगों को न बेचना किसी प्रकार अच्छा है) ॥ ५ ॥

अरोषणो यः समलोष्टाश्मकाञ्चनः प्रहीणलोको गतसन्धिविग्रहः । निन्दाप्रशंसोपरतः प्रियाप्रिये त्यजन्नुदासीनवदेषभिक्षुकः ॥ ६ ॥

भिक्षुक वह है जो क्रोध को त्यागे, ढेले पत्थर और सुवर्ण को एकसा समझे, शोकहीन हो, मेल और लड़ाई से अलग, निन्दा और प्रशंसा से कुछ लगाव नहीं, प्यारे और बे प्यारे को छोड़ दे, मानों उदासीन हो ६

नीवारमूलाङ्गुदशाकवृत्तिः सुसंयतात्माग्निकार्येषु चोद्यः। वने वसन्नतिथिष्वप्रमत्तो धुरन्धरः पुण्यकृदेष तापसः ॥७॥

धुरन्धर पुण्यात्मा तपस्वी वह है जो *नीवार मूल इङ्गुद शाक से पेट भर ले, मन को वश में रक्खे, और अग्निहोत्रादि में उद्यत हो, वन में रहे, और अतिथियों के विषय में प्रमाद न करे ॥७॥

अपकृत्य बुद्धिमतो दूरस्थ स्मीति नाश्वसेत्।
दीर्घौ बुद्धिमतो बाहू याभ्यां हिंसति हिंसितः॥८॥

बुद्धिमान् का बिगाड़ करके यह न समझे कि दूर हूं क्योंकि बुद्धिमान् की बाहु लम्बी हैं जिन से वह मारा हुआ मारता है ॥८॥

---

* फल मूलादि के विशेष नाम हैं।

न विश्वसेदविश्वस्ते विश्वस्ते नातिविश्वसेत् ।
विश्वासाद्भयमुत्पन्नं मूलान्यपि निकृन्तति ॥९॥

अविश्वास्य का विश्वास न करे और विश्वास्य का भी अतिविश्वास न करे। क्योंकि विश्वास से उत्पन्न हुवा भय जड़ों को भी काट देता है ॥ ९ ॥

अनीर्ष्युर्गुप्तदारश्च संविभागी प्रियंवदः ।
श्लक्ष्णो मधुरवाक् स्त्रीणां न चासां वशगो भवेत् ॥

(मनुष्य को योग्य है कि) ईर्ष्या न करे, स्त्री की रक्षा करे, बांट कर खावे, प्रिय बोले, नम्र रहे, मधुर वचन बोले और इन स्त्रियों के वश में न हो ॥ १० ॥

पूजनीया महाभागाः पुण्याश्च गृहदीप्तयः ।
स्त्रियः श्रियो गृहस्योक्तास्तस्माद्रक्ष्या विशेषतः ॥

स्त्रियां घर की लक्ष्मी हैं, ये पूजनीय, बड़भागिनी, पुण्य, घर का उजाला हैं इस कारण विशेष कर रक्षा योग्य हैं

पितुरन्तःपुरं दद्यान्मातुर्दद्यान्महानसम् ।
गोषु चात्मसमं दद्यात्स्वयमेव कृषिं व्रजेत् ॥१२॥

पिता के तुल्य पुरुष को रनवास में जाने दे, पाकादि-

कारी के स्थान में माता को जाने दे, गौओं में अपने तुल्य को जाने दे। परन्तु कृषि (खेती) के लिये तो स्वयं ही जाय (अर्थात् रसवास पाकशाला तथा गौओं में तो अन्यों का विश्वास कर भी ले परन्तु खेती में नहीं) ॥१२॥

भृत्यैर्वाणिज्यचारं च पुत्रैः सेवेत च द्विजान्।
अद्भ्योऽग्निर्ब्रह्मतः क्षत्रमश्मनो लोहमुत्थितम्॥

भृत्यों से वाणिज्य और पुत्रों से द्विजों की सेवा करे॥ जलों से अग्नि, ब्रह्म से क्षत्र और पत्थर से लोहा निकलता है— ॥१३॥

तेषां सर्वत्रगं तेजः स्वासु योनिषु शाम्यति।
नित्यं सन्तः कुले जाताः पावकोपमतेजसः।१४।

उन में से सर्व का तेज अपने कारण में शान्त हो जाता है (अर्थात् अग्नि जल से, क्षत्रिय ब्राह्मण से और लोहा पत्थर से शान्त होता है) और नित्य कुलीन सत्पुरुष अग्नि तुल्य तेजस्वी,—॥१४॥

क्षमावन्तो निराकाराः काष्ठेग्निरिव शेरते।
यस्य मन्त्रं न जानन्ति बाह्याश्चाभ्यन्तराश्च ये॥

क्षमा वाले, छिपे हुवे काष्ठ में अग्नि के तुल्य रहते हैं॥ जिस के गुप्त भेद को बाहर और भीतर के लोग भी नहीं जानते—॥१५॥

स राजा सर्वतश्चक्षुश्चिरमैश्वर्यमश्नुते।
करिष्यन्न प्रभाषेत कृतान्येव तु दर्शयेत् ॥१६॥
धर्मकामार्थकार्याणि तथा मन्त्रो न भिद्यते।
गिरिपृष्ठमुपारुह्य प्रासादं वा रहोगतः ॥ १७ ॥

वह सब ओर देखने वाला राजा बहुत काल ऐश्वर्य भोगता है॥ धर्म काम और अर्थों के कार्यों को करने से पूर्व न कहे किन्तु करके ही दिखावे, इस प्रकार मन्त्र (सलाह) फूटती नहीं॥ पर्वत पर चढ़ के वा एकान्त महल में अथवा—॥१६।१७॥

अरण्ये निःशलाके वा तत्र मन्त्रोऽभिधीयते।
नासुहृत्परमं मन्त्रं भारतार्हति वेदितुम् ॥१८॥

झाड़ झूंडरहित जङ्गल में (क्योंकि) वहां गुप्त विचार किया जाता है॥ हे धृतराष्ट्र! जो मित्र नहीं वह परम मन्त्र (सलाह) को जानने योग्य नहीं है॥१८॥

अपण्डितो वापि सुहृत् पण्डितो वाप्यनात्मवान्।
नापरीक्ष्य महीपालः कुर्यात्सचिवमात्मनः ।१९।

मूर्ख हो, वा पण्डित होकर भी मन जीता न हो ऐसे मित्र को विना विचारे राजा अपना मित्र न बनावे १९

अमात्ये ह्यर्थलिप्सा च मन्त्ररक्षणमेव च ।
कृतानि सर्वकार्याणि यस्य पारिषदा विदुः।२०।
धर्मे चार्थे च कामे च स राजा राजसत्तमः ।
गूढमन्त्रस्य नृपतेस्तस्य सिद्धिरसंशयम् ॥२१॥

मित्र के आधार पर धनलाभ की इच्छा और मन्त्र की रक्षा है । जिस के धर्म अर्थ और काम में—कार्य्य हो चुके तब पास बैठने वाले जान पावें, वह राजा राजों में उत्तम है, उस छिपी सलाह वाले राजा को निस्सन्देह सिद्धि है ॥ २० । २१ ॥

अप्रशस्तानि कार्याणि यो मोहादनुतिष्ठति ।
स तेषां विपरिभ्रंशाद्भ्रश्यते जीविताद्पि ।२२।

जो अज्ञान से निन्दित काम करता है वह कामों के के नाश से स्वयं भी जीवन खोता है ॥ २२ ॥

कर्मणां तु प्रशस्तानामनुष्ठानं सुखावहम् ।
तेषामेवाननुष्ठानं पश्चात्तापकरं मतम् ॥ २३ ॥

उत्तम कर्मों का करना सुख पहुंचाने वाला है और उन का न करना पछतावे का कारण माना है ॥ २३ ॥

अनधीत्य यथा वेदान्न विप्रः श्राद्धमर्हति ।
एवमश्रुतषाड्गुण्यो न मन्त्रं श्रोतुमर्हति ॥२४॥

जिस प्रकार ब्राह्मण वेदों को विना पढ़े श्रद्धा सत्कार के योग्य नहीं इसी प्रकार छः गुणों का न जानने वाला, मन्त्र सुनाने योग्य नहीं । (१ सन्धि २ विग्रह ३ यान ४ आसन ५ द्वैध ६ आश्रय ये छः राजनीति के गुण हैं) ।२४।

स्थानवृद्धिक्षयज्ञस्य षाड्गुण्यविदितात्मनः ।
अनवज्ञातशीलस्य स्वाधीना पृथिवी नृप ! ॥

हे राजा ! ठहराव वृद्धि और क्षय के ज्ञाता, मन में छः गुणों के ज्ञाता, प्रसन्न स्वभाव वाले (पुरुष) को पृथिवी स्वाधीन है ॥ २५ ॥

अमोघक्रोधहर्षस्य स्वयं कृत्वान्ववेक्षिणः ।
आत्मप्रत्ययकोशस्य वसुदैव वसुन्धरा ॥२६॥

जिस के क्रोध और प्रमाद व्यर्थ न हों, जो स्वयं करके फिर देखे और जो कोश (ख़जाने) में अपनी ही प्रतीति करे (उस राजा को) पृथिवी धन देने वाली होती है ॥२६॥

नाममात्रेण तुष्येत छत्रेण च महीपतिः।
भृत्येभ्यो विसृजेदर्थान्नैकः सर्वहरो भवेत् ।२७।

राजा नाममात्र (अधिकार) और छत्र से प्रसन्न रहे किन्तु अकेला सब न लेले प्रत्युत सेवकों को धनादि बांटा करे ॥ २७ ॥

ब्राह्मणं ब्राह्मणो वेद भर्त्तारं वेद स्त्रियं तथा।
अमात्यं नृपतिर्वेद राजा राजानमेव च ॥२८॥

ब्राह्मण को ब्राह्मण ही जानता है, स्त्री को पुरुष ही जानता है, मन्त्री को राजा जानता है और राजा को (दूसरा) राजा ही जानता है, सामान्य लोग नहीं ॥ २८ ॥

न शत्रुर्वशमापन्नो मोक्तव्यो वध्यतां गतः।
न्यग्भूत्वा पर्युपासीत वध्यं हन्याद्बले सति।
अहतादि भयं तस्माज्जायते न चिरादिव ।२९।

जो शत्रु मार डालने योग्य हो और वश में आगया

हो उसे छोड़ना न चाहिये किन्तु या तो बचा रह कर घेरे रहे वा बल हो तो मारने योग्य को मार डाले क्योंकि उस के न मारे से शीघ्र भय होता है ॥ २९ ॥

दैवतेषु प्रयत्नेन राजसु ब्राह्मणेषु च ।
नियन्तव्यः सदा क्रोधो वृद्धबालातुरेषु च ॥३०॥

देवता ब्राह्मण राजा और बालक बूढ़े तथा रोगियों पर क्रोध को सदा यत्नपूर्वक रोकना चाहिये ॥ ३० ॥

निरर्थं कलहं प्राज्ञो वर्जयेन्मूढसेवितम् ।
कीर्तिं च लभते लोके न चानर्थेन युज्यते ॥३१॥

मूर्खों से सेवित, व्यर्थ वैर को विद्वान् छोड़ दे, (इस से) लोक में कीर्ति को प्राप्त होता और अनर्थ से नहीं भिड़ता ॥ ३१ ॥

प्रसादो निष्फलो यस्य क्रोधश्चापि निरर्थकः ।
न तं भर्तारमिच्छन्ति षण्ढं पतिमिवस्त्रियः ।३२ ।

जिस की प्रसन्नता निष्फल हो और क्रोध भी व्यर्थ हो उस को (राजा को प्रजा) ऐसे नहीं चाहतीं जैसे नपुंसक पति को स्त्रियां ॥ ३२ ॥

न बुद्धिर्धनलाभाय न जाड्यमसमृद्धये ।
लोकपर्यायवृत्तान्तं प्राज्ञो जानाति नेतरः ।३३।

न तो बुद्धि धन प्राप्ति के लिये है, न मूर्खता दारिद्र्य के लिये। किन्तु संसार के फेर फार को विद्वान् ही जानता है, मूर्ख नहीं ॥ ३३ ॥

विद्याशीलवयोवृद्धान् बुद्धिवृद्धांश्च भारत !
धनाभिजातवृद्धांश्च नित्यं मूढोऽवमन्यते ।३४।

हे तात ! मूर्ख मनुष्य नित्य-विद्या शील अवस्था बुद्धि धन और कुलीनता से बड़ों का अपमान किया करता है ३४

अनार्यवृत्तमप्राज्ञमसूयकमधार्मिकम् ।
अनर्थाः क्षिप्रमायान्ति वाग्दुष्टं क्रोधनं तथा ३५

दुराचारी निर्बुद्धि चुगलखोर अधर्मी तथा कटुवादी और क्रोधी को तत्काल अनर्थ घेरते हैं ॥ ३५ ॥

अविसंवादनं दानं समयस्याव्यतिक्रमः ।
आवर्तयन्ति भूतानि सम्यक्प्रणिहिता च वाक् ३६

व्यर्थ वाद न करना, दान, समय को न बिताना

और वाणी का समाहित रखना—ये प्राणियों को सुकर्मों में लगाते हैं ॥ ३६ ॥

अविसंवादको दक्षः कृतज्ञो मतिमानृजुः ।
अपि सङ्क्षीणकोशोऽपि लभते परिवारणम् ३७

व्यर्थ वाद न करने वाला, चतुर, कृतज्ञ, बुद्धिमान् और सरल मनुष्य; निर्धन होकर भी बचाव को प्राप्त कर लेता है ॥ ३७ ॥

धृतिः शमो दमः शौचं कारुण्यं वागनिष्ठुरा ।
मित्राणां चानभिद्रोहः सप्तैताःसमिधः श्रियः ३८

धैर्य, शान्ति, इन्द्रियनिग्रह, शौच, दयाभाव, कोमल वाणी, मित्रों से द्रोह न करना; ये सात लक्ष्मी की समिधा हैं (जैसे समिधों से अग्नि बढ़ती है वैसे इन से लक्ष्मी बढ़ती है) ॥ ३८ ॥

असंविभागी दुष्टात्मा कृतघ्नो निरपत्रपः ।
तादृङ्नराधिपो लोके वर्जनीयो नराधिप ! ३९।

हे राजा ! जो बांट कर न खावे, दुरात्मा हो, कृतघ्न और निर्दय हो, संसार में ऐसे राजा को छोड़ दे ॥ ३९ ॥

न च रात्रौ सुखं शेते ससर्प इव वेश्मनि।
यः कोपयति निर्दोषं सदोषोऽभ्यन्तरं जनम् ४०

जो घर के निर्दोष मनुष्य को कुपित करता है और स्वयं दोषी है वह रात्रि में ऐसे सुख से नहीं सोता जैसे सर्प वाले घर में ॥४०॥

येषु दुष्टेषु दोषः स्याद्योगक्षेमस्य भारत!।
सदा प्रसादनं तेषां देवतानामिवाचरेत् ॥४१॥

जिन के बिगड़ने से सुख चैन में बिगाड़ हो, हे राजा उन की सदा देवतों के समान प्रसन्न रखने का आचरण करे ॥४१॥

येऽर्थाः स्त्रीषु समायुक्ताः प्रमत्तपतितेषु च।
ये चानार्ये समासक्ताः सर्वे ते संशयं गताः ४२

जो धन स्त्रियों, प्रमत्तों, पतितों और अनाड़ियों के आधीन हैं वे सब संशय में हैं ॥४२॥

यत्र स्त्री यत्र कितवो बालो यत्रानुशासिता।
मज्जन्ति तेऽवशा राजन्नश्मानमप्लवा इव।४३।

जहां स्त्री जहां जुलिया और जहां बालक राजा हो वे निवश ऐसे डूबते हैं जिस प्रकार नदी में पत्थर की नावें ॥४३॥

प्रयोजनेषु ये सक्ता न विशेषेषु भारत! ।
तानहं पण्डितान्मन्ये विशेषा हि प्रसङ्गिनः ।४४।

जो प्रयोजन सिर ही लगते हैं विशेषों में नहीं, मैं उन्हें पण्डित मानता हूं, विशेष तो प्रसङ्गी हैं ॥४४॥

यं प्रशंसन्ति कितवा यं प्रशंसन्ति चारणाः ।
यं प्रशंसन्ति वन्धक्यो न स जीवति मानवः ४५

जिसकी छलिया प्रशंसा करते जिस की चारण (भांड) प्रशंसा करते और जिस की वेश्यायें प्रशंसा करती हैं वह मनुष्य जीता नहीं (मरा है) ॥४५॥

हित्वा तान्परमेष्वासान् पाण्डवानमितौजसः ।
आहितं भारतैश्वर्यं त्वया दुर्योधने महत् ॥४६॥

तुम ने महाधनुर्धर अतिबली पाण्डवों को छोड़ कर भारत का भारी राज्य दुर्योधन पर रक्खा—॥४६॥

तं द्रक्ष्यसि परिभ्रष्टं तस्मात्त्वमचिरादिव ।
ऐश्वर्यमदसम्मूढं बलिं लोकत्रयादिव ॥४७॥

इति श्री महा० उद्यो० गं० सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥३७॥

प्रजागरप०विदुरवाक्ये च षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

इसलिये तू शीघ्र ही उस राज्य मद से मूढ (दुर्योधन) को राज्य से भ्रष्ट होते ऐसे देखेगा जिस प्रकार त्रिलोकी से भ्रष्ट बलि (राजा) को ॥४७॥

यह महाभारत उद्योग पर्व में सैंतीसवां ३७ अध्याय और विदुर के हितकारक वाक्यरूप प्रजागर पर्व में छठा अध्याय हुआ ॥६॥

धृतराष्ट्र उवाच ।

अनीश्वरोऽयं पुरुषो भवाभवे सूत्रप्रोता दारुमयीव योषा । धात्रा तु दिष्टस्य वशे कृतोऽयं तस्माद्द त्वं श्रवणे धृतोऽहम् ॥ १ ॥

धृतराष्ट्र बोले कि—यह मनुष्य हानि लाभ में परतन्त्र है और विधाता ने दैव के आधीन कर दिया है जैसे धागे में बन्धी कठपुतली । इस कारण तुम कहो, मैं कान लगाये हूं ॥१॥

विदुर उवाच

अप्राप्तकालं वचनं बृहस्पतिरपि ब्रुवन् ।

लभते बुद्धिवज्ञानमवमानं च भारत ! ॥ २ ॥

विदुरजी बोले कि—समय के विरुद्ध बोलता हुवा बृहस्पति भी बुद्धि के तिरस्कार और अपमान को पाता है ॥२॥

प्रियो भवति दानेन प्रियवादेन चापरः ।
मन्त्रमूलबलेनान्यो यः प्रियः प्रिय एव सः ॥३॥

कोई दान से प्यारा बनता और कोई प्यारी वाणी से प्यारा बनता है परन्तु जो (मन्त्र) सलाह की जड़के बल से प्यारा है वही ठीक है ॥३॥

द्वेष्यो न साधुर्भवति न मेधावी न पण्डितः ।
प्रिये शुभानि कार्याणि द्वेष्ये पापानि चैव ह ॥४॥

साधु बुद्धिमान् और पण्डित द्वेष के योग्य नहीं हैं किन्तु शुभ कर्मों से प्रीति करनी चाहिये और पापों से द्वेष ४

उक्तं मया जातमात्रेऽपि राजन्दुर्योधनं त्यज पुत्रं त्वमेकम् । तस्य त्यागात्पुत्रशतस्य वृद्धिरस्याऽ-त्यागात्पुत्रशतस्य नाशः ॥ ५ ॥

मैंने दुर्योधन के जन्म होते ही कहा था कि हे

राजन्! इसे त्याग दो इस के त्याग से १०० पुत्रों की वृद्धि और न त्यागने से १०० पुत्रों का नाश है ॥५॥

न वृद्धिर्बहु मन्तव्या या वृद्धिः क्षयमावहेत् ।
क्षयोऽपि बहु मन्तव्यो यः क्षयो वृद्धिमावहेत् ।६।

जो वृद्धि, नाश को लावे वह वृद्धि भली नहीं माननी, किन्तु वह नाश भी बहुत अच्छा जो नाश, वृद्धि को लावे ॥६॥

न स क्षयो महाराज ! यः क्षयो वृद्धिमावहेत् ।
क्षयः स त्विह मन्तव्यो यं लब्ध्वा बहु नाशयेत् ॥

हे महाराज! वह नाश नाश नहीं जो वृद्धि को लावे प्रत्युत वही नाश है जिस के लाभ से बहुत का नाश हो ७

समृद्धा गुणतः केचिद्धवन्ति धनतोऽपरे ।
धनवृद्धान्गुणैर्हीनान्धृतराष्ट्र ! विवर्जय ॥ ८ ॥

हे धृतराष्ट्र ! कोई धन में बड़े हैं और कोई गुण में समृद्ध हैं। परन्तु गुणों से रहित धन में बड़ों को त्याग दो ८

धृतराष्ट्र उवाच

सर्वं त्वमायतीयुक्तं भाषसे प्राज्ञसम्मतम् ।

न चोत्सहे सुतं त्यक्तुं यतो धर्मस्ततो जयः ॥९॥

धृतराष्ट्र बोले कि—तुम जो कुछ कहते हो वह सब भविष्यत् में सुखदायक और विद्वानों से माना हुवा है और जिस ओर धर्म उस ओर जय होता है, परन्तु मैं पुत्र को छोड़ना नहीं चाहता ॥९॥

विदुर उवाच

अतीव गुणसम्पन्नो न जातु विनयान्वितः ।
सुसूक्ष्ममपि भूतानामुपमर्दमुपेक्षते ॥ १० ॥

जो विनय से युक्त और गुणों से संपन्न है वह प्राणियों के थोड़े से भी नाश की उपेक्षा नहीं करता ॥१०॥

परापवादनिरताः परदुःखोदयेषु च ।
परस्परविरोधे च यतन्ते सततोत्थिताः ॥ ११ ॥

जो सदा उभरे रहते हैं वे पराई निन्दा में प्रसक्त होते और पराये दुःखों के उदयों में, तथा परस्पर के विरोध में यत्न करते हैं ॥११॥

सदोषं दर्शनं येषां संवासे सुमहद्भयम् ।
अर्थादाने महान्दोषः प्रदाने च महद्भयम् ॥१२॥

जिन के दर्शन में भी दोष और साथ रहने में बड़ा भय है तथा जिन से धनादि के लेने और देने में भीदोष और भय है ॥१२॥

ये वै भेदनशीलास्तु सकामा निस्त्रपाः शठाः ।
ये पापा इति विख्याताः संवासे परिगर्हिताः ।१३।

जो लड़ने का स्वभाव रखते हैं, जो कामी निर्लज्ज और शठ हैं, जो पापी विख्यात हैं, वे समीप वास करने में निन्दनीय है ॥१३॥

युक्ताश्चान्यैर्महादोषैर्ये नरास्तान् विवर्जयेत् ।
निवर्तमाने सौहार्दे प्रीतिर्नीचे प्रणश्यति ॥१४॥

तथा जो अन्य बड़े दोषों से युक्त पुरुष हैं, उन्हें वर्जित करे क्योंकि नीच से मित्रता हटने पर प्रीति नष्ट होती है १४

या चैव फलनिर्वृत्तिः सौहृदे चैव यत्सुखम् ।
यतते चापवादाय यत्नमारभते क्षये ॥ १५ ॥

तथा जो फल की सिद्धि और मित्रता में सुख है वह भी (नष्ट हो जाती है) ॥ (वह नीच मित्राभास) निन्दा के लिये यत्न करता और नाश के यत्न का आरम्भ करता है १५

अल्पेऽप्यपकृते मोहान्न शान्तिमधिगच्छति ।
तादृशैः सङ्गतं नीचैर्नृशंसैरकृतात्मभिः ॥ १६॥

थोड़े अपकार (नुक़सान) पर भी शान्ति को नहीं प्राप्त होता, ऐसे नीच निन्दित अजितेन्द्रियों के साथ निवास को—॥१६॥

निशम्य निपुणं बुद्ध्वा विद्वान्दूराद्विवर्जयेत् ।
यो ज्ञातिमनुगृह्णाति दरिद्रं दीनमातुरम् ॥१७॥

अच्छे प्रकार समझकर विद्वान् पुरुष दूर से ही त्याग दे ॥ दरिद्र दीन आतुर भाई बन्धु पर जो दया करता है—॥१७॥

स पुत्रपशुभिर्वृद्धिं श्रेयश्चानन्तमश्नुते ।
ज्ञातयो वर्द्धनीयास्तैर्य इच्छन्त्यात्मनः शुभम् ॥

वह पुत्र और पशुओं से वृद्धि तथा अनन्त सुख को भोगता है । जो अपना भला चाहते हैं उन्हें बन्धु लोग बढ़ाने चाहियें ॥ १८ ॥

कुलवृद्धिं च राजेन्द्र ! तस्मात्साधु समाचर ।
श्रेयसा योक्ष्यते राजन्! कुर्वाणो ज्ञातिसत्क्रियाम्

हे राजेन्द्र ! इस कारण कुल की वृद्धि अच्छे प्रकार

करो। हे राजा! भाइयों के सत्कार को करते हुये आप सुख से युक्त होओगे ॥ १९ ॥

विगुणा ह्यपि संरक्ष्या ज्ञातयो भरतर्षभ !।
किं पुनर्गुणवन्तस्ते त्वत्प्रसादाभिकाङ्क्षिणः २०

हे भरतर्षभ! भाई लोग गुणहीन हों वे भी रक्षा के योग्य हैं फिर भला वे (पाण्डव) तो गुणवान् हैं और तुम्हारी प्रसन्नता चाहते हैं ॥ २० ॥

प्रसादं कुरु वीराणां पाण्डवानां विशाम्पते !।
दीयन्तां ग्रामकाः केचित्तेषां वृत्त्यर्थमीश्वर !॥२१॥

हे प्रजाओं के पति ! प्रभु ! वीर पाण्डवों पर प्रसन्न हो जावो, उन की जीविका के लिये कुछ ग्राम दे दो ॥२१॥

एवं लोके यशः प्राप्तं भविष्यति नराधिप !।
वृद्धेन हि त्वया कार्यं पुत्राणां तात ! शासनम् ॥

हे राजा! ऐसा करने पर लोक में यश प्राप्त होगा हे तात! आप बूढ़े हैं इस से पुत्रों को समझाना चाहिये ॥२२॥

मया चापि हितं वाच्यं विद्धि मां त्वद्धितैषिणम्।
ज्ञातिभिर्विग्रहस्तात ! न कर्त्तव्यः शुभार्थिना।

सुखानि सह भोज्यानि ज्ञातिभिर्भरतर्षभ ! ॥२३॥

हे तात ! भरतर्षभ ! और मुझे भी तुम्हारा भला करने वाला वचन कहना चाहिये, मुझे अपना हितैषी जानो, भला चाहने वाले को भाइयों से विरोध न करना चाहिये, किन्तु भाइयों के साथ सुखभोगने चाहियें ॥२३॥

सम्भोजनं सङ्कथनं सम्प्रीतिश्च परस्परम् ।
ज्ञातिभिः सह कार्याणि न विरोधः कदाचन ।२४।

भाइयों के साथ भोजन वार्तालाप और प्रीति करनी चाहिये, परस्पर विरोध कभी नहीं ॥ २४ ॥

ज्ञातयस्तारयन्तीह ज्ञातयो मज्जयन्ति च ।
सुवृत्तास्तारयन्तीह दुर्वृत्ता मज्जयन्ति च ॥२५॥

संसार में भाई ही तिराते और भाई ही डुबाते हैं, सदाचारी तिराते और दुराचारी डुबाते हैं ॥ २५ ॥

सुवृत्तो भव राजेन्द्र ! पाण्डवान्प्रति मानद ।
अधर्षणीयः शत्रूणां तैर्वृतस्त्वं भविष्यसि ॥२६॥

हे मान के दाता ! राजेन्द्र ! पाण्डवों से अच्छा व्यवहार करो, उन से मिले तुम शत्रुओं से न दबाये जाओगे ॥

श्रीमन्तं ज्ञातिमासाद्य यो ज्ञातिरवसीदति ।
दिग्धहस्तं मृग इव स एनस्तस्य विन्दति ॥२७॥

(जिस) लक्ष्मीवान् भाई को पाय जो (दूसरा) भाई दुःख पाता है वह ऐसे उस के पाप को प्राप्त होता है जैसे हाथ सने को मृग (मृग उस अधिक के हाथ मारा जाता है जिस के हाथ रुधिरादि से सने हैं और वह लक्ष्मीवान् भाई, दुःखित दरिद्र भाई से मारा जाता है) ॥ २७ ॥

पश्चादपि नरश्रेष्ठ! तव तापो भविष्यति ।
तान्वा हतान्सुतान्वापि श्रुत्वा तदनुचिन्तय २८

हे राजा !तुम को उन पाण्डवों को मारा गया सुनकर अथवा अपने पुत्रों को मारा गया सुनकर भी पीछे पछतावा होगा, इस को विचार लो ॥२८॥

येन खट्वां समारूढः परितप्येत कर्मणा ।
आदावेव न तत्कुर्यादध्रुवे जीविते सति ॥२९॥

जीवन का भरोसा नहीं इस लिये जिस कर्म से पीछे खाट पर पड़ के दुःख भोगना पड़े, उस कर्म को पहिले ही न करे ॥२९॥

न कश्चिन्नापनयते पुमानन्यत्र भार्गवात् ।
शेषसम्प्रतिपत्तिस्तु बुद्धिमत्स्वेव तिष्ठति ॥३०॥

"शुक्राचार्य्य के अतिरिक्त कोई नीतिविरुद्ध नहीं करता" यह नियम नहीं है (किन्तु बहुत लोग नीतिविरुद्ध करते हैं) [नीति में कहे से] शेष को ठीक २ करना तो बुद्धिमानों ही में रहता है ॥३०॥

दुर्योधनेन यद्येतत्पापं तेषु पुरा कृतम् ।
त्वया तत्कुलवृद्धेन प्रत्यानेयं नरेश्वर ! ॥३१॥

यदि दुर्योधन ने उन (पाण्डवों) के विषय में पहिले यह पाप कर भी लिया तो हे राजा ! आप कुल के बड़े हैं आप को हटा देना चाहिये ॥३१॥

तांस्त्वं पदे प्रतिष्ठाप्य लोके विगतकल्मषः ।
भविष्यसि नरश्रेष्ठ ! पूजनीयो मनीषिणाम् ३२

हे मनुष्यों में श्रेष्ठ ! उन (पाण्डवों) को अधिकार पर प्रतिष्ठित करके तुम संसार में निर्दोष और बुद्धिमानों में पूजनीय होजाओगे ॥३२॥

सुव्याहृतानि धीराणां फलतः परिचिन्त्य यः ।

अध्यवस्यति कार्येषु चिरं यशसि तिष्ठति ॥३३॥

जो बुद्धिमानों के सुवचनों को विचार कर तथा कार्यों में परिणाम (फल) को विचार कर करता है वह बहुत काल तक यश में ठहरता है ॥३३॥

असम्यगुपयुक्तं हि ज्ञानं सुकुशलैरपि ।
उपलभ्यं चाविदितं विदितं चाननुष्ठितम् ।३४।

बुद्धिमानों से उपदेश किया हुवा भी ज्ञान व्यर्थ है, यदि समझा न जावे; अथवा समझा जाय पर तदनुकूल किया न जावे ॥ ३४ ॥

पापोदयफलं विद्वान्यो नारभति वर्धते । यस्तु पूर्वकृतं पापमविमृश्यानुवर्त्तते । अगाधपङ्के दुर्मेधा विषमे विनिपात्यते ॥३५॥

जो पाप के उदय होने वाले फल का जानने वाला-(पाप का) आरम्भ नहीं करता (वह) वृद्धि को प्राप्त होता है । परन्तु पाप किया और वैसा ही किये जाता है (वह) दुर्बुद्धि गहरी टेढ़ी दलदल में गिराया जाता है ॥ ३५ ॥

मन्त्रभेदस्य षट् प्राज्ञो द्वाराणीमानि लक्षयेत् ।

अर्थसन्ततिकामश्च रक्षेदेतानि नित्यशः ॥३६॥

चतुर पुरुष—तलाह खुल जाने के इन छः द्वारों को देखे रहे और प्रयोजननिद्धि के फैलाव का चाहने वाला इन्हें नित्य बचाये रहे ॥ ३६ ॥

मदं स्वप्नमविज्ञानमाकारं चात्मसम्भवम् ।
दुष्टामात्येषु विश्रम्भं दूताज्ञाकुशलादपि ॥३७॥

१—नशा २—निद्रा ३—बेसमझी ४—अपना दिखावा ५—दुष्ट मन्त्रियों में भरोसा ६—और मूढ दूत से भी ॥ ३७ ॥

द्वाराण्येतानि यो ज्ञात्वा संवृणोति सदा नृप ।
त्रिवर्गाचरणे युक्तः स शत्रूनधितिष्ठति ॥३८॥

जो इन द्वारों को जान कर सदा ढांपे रहता है, हे राजा! वह त्रिवर्ग (धर्म अर्थ काम) के सिद्ध करने में लगा हुवा शत्रुओं को अधिकार में लाता है ॥ ३८ ॥

न वै श्रुतमविज्ञाय वृद्धाननुपसेव्य वा ।
धर्मार्थौ वेदितुं शक्यौ बृहस्पतिसमैरपि ॥३९॥

बृहस्पति के समान पुरुषों से भी बिना शास्त्र पढ़े और बिना वृद्धों की सेवा किये, धर्म अर्थ नहीं जाने जासके ॥

अध्यवस्यति कार्येषु चिरं यशसि तिष्ठति ॥३३॥

जो बुद्धिमानों के सुवचनों को विचार कर तथा कार्यों में परिणाम (फल) को विचार कर करता है वह बहुत काल तक यश में ठहरता है ॥३३॥

असम्यगुपयुक्तं हि ज्ञानं सुकुशलैरपि ।
उपलभ्यं चाविदितं विदितं चाननुष्ठितम् ।३४।

बुद्धिमानों से उपदेश किया हुवा भी ज्ञान व्यर्थ है, यदि समझा न जावे; अथवा समझा जाय पर तदनुकूल किया न जावे ॥ ३४ ॥

पापोदयफलं विद्वान्यो नारभति वर्धते । यस्तु पूर्वकृतं पापमविमृश्यानुवर्त्तते । अगाधपङ्के दुर्मेधा विषमे विनिपात्यते ॥३५॥

जो पाप के उदय होने वाले फल का जानने वाला-(पाप का) आरम्भ नहीं करता (वह) वृद्धि को प्राप्त होता है। परन्तु पाप किया और वैसा ही किये जाता है (वह) दुर्बुद्धि गहरी टेढ़ी दलदल में गिराया जाता है ॥ ३५ ॥

मन्त्रभेदस्य षट् प्राज्ञो द्वाराणीमानि लक्षयेत् ।

अर्थसन्ततिकामश्च रक्षेदेतानि नित्यशः ॥३६॥

चतुर पुरुष—सलाह खुल जाने के इन छः द्वारों को देखे रहे और प्रयोजनसिद्धि के फैलाव का चाहने वाला इन्हें नित्य बचाये रहे ॥ ३६ ॥

मदं स्वप्नमविज्ञानमाकारं चात्मसम्भवम् ।
दुष्टामात्येषु विश्रम्भं दूताच्चाकुशलादपि ॥३७॥

१—नशा २—निद्रा ३—बेसमझी ४—अपना दिखावा ५—दुष्ट मन्त्रियों में भरोसा ६—और मूढ दूत से भी ॥ ३७ ॥

द्वाराण्येतानि यो ज्ञात्वा संवृणोति सदा नृप ।
त्रिवर्गाचरणे युक्तः स शत्रूनधितिष्ठति ॥३८॥

जो इन द्वारों को जान कर सदा ढांपे रहता है, हे राजा! वह त्रिवर्ग (धर्म अर्थ काम) के सिद्ध करने में लगा हुवा शत्रुओं को अधिकार में लाता है ॥ ३८ ॥

न वै श्रुतमविज्ञाय वृद्धाननुपसेव्य वा ।
धर्मार्थौ वेदितुं शक्यौ बृहस्पतिसमैरपि ॥३९॥

बृहस्पति के समान पुरुषों से भी बिना शास्त्र पढ़े और बिना वृद्धों की सेवा किये, धर्म अर्थ नहीं जाने जासके ॥

नष्टं समुद्रे पतितं नष्टं वाक्यमशृण्वति।
अनात्मनि श्रुतं नष्टं नष्टं हुतमनग्निकम् ॥४०॥

जो समुद्र में गिर गया वह नष्ट हुवा, न सुनने वाले के विषय में कहा वाक्य नष्ट हुवा, बेसमझ पुरुष में शास्त्र नष्ट हुवा (अर्थात् न मानो तो तुम से कहना व्यर्थ है) ४०

मत्या परीक्ष्य मेधावी बुद्ध्या सम्पाद्य चासकृत्
श्रुत्वा दृष्ट्वाथ विज्ञाय प्राज्ञैर्मैत्रीं समाचरेत् ॥४१॥

चतुर पुरुष मति से परीक्षा करके, बुद्धि से बारंबार सिद्ध करके, सुन कर देखकर और समझ कर विद्वानों से मित्रता करे ॥ ४१ ॥

अकीर्तिं विनयो हन्ति हन्त्यनर्थं पराक्रमः।
हन्ति नित्यं क्षमा क्रोधमाचारो हन्त्यलक्षणम् ४२

नम्रता अपयश को मारती है, पराक्रम दरिद्रता को मारता है, क्षमा क्रोध को मारती है, सदाचार नित्य बुरे लक्षण को मारता है ॥४२॥

परिच्छदेन क्षेत्रेण वेश्मना परिचर्यया।
परीक्षेत कुलं राजन्! भोजनाच्छादनेन च॥४३॥

हे राजा ! भोग्य वस्तुओं, जहां से उत्पत्ति हो, स्थान, सेवा, भोजन और वस्त्र (इन सब बातों) से कुल को पहिचाने ॥ ४३ ॥

उपस्थितस्य कामस्य प्रतिवादो न विद्यते ।
अपि निर्मुक्तदेहस्य कामरक्तस्य किं पुनः ।४४।

उपस्थित हुए काम को हटाया नहीं जा सक्ता । जब कि देह से निर्मुक्त का भी नहीं तो फिर काम में रंगे हुवे का क्या कहना है ॥ ४४ ॥

प्राज्ञोपसेविनं वैद्यं धार्मिकं प्रियदर्शनम् ।
मित्रवन्तं सुवाक्यं च सुहृदं परिपालयेत् ।४५।

विद्वानों के सेवक, वैद्य, धार्मिक, सुरूप, मित्रों वाले और सुन्दर वचन बोलने वाले मित्र को सब प्रकार निबाहे ।

दुष्कुलीनः कुलीनो वा मर्यादां यो न लङ्घयेत् ।
धर्मापेक्षी मृदुर्ह्रीमान् स कुलीनशतादरः ॥४६॥

जो कुलीन हो वा न हो परन्तु मर्य्यादा को उल्लङ्घित न करे, धर्म की अपेक्षा वाला हो, कोमल और लज्जा वाला हो वह १०० सौ कुलीनों से अच्छा है ॥ ४६ ॥

यथोदिचतेन वा चित्तं निभृतं निभृतेन वा।
समेति प्रज्ञया प्रज्ञा तयोर्मैत्री न जीर्यति ॥४७॥

जिन दो का चित्त से चित्त, मन्त्र से मन्त्र और बुद्धि से बुद्धि मिलती है उन दो की मित्रता न्यून नहीं होती॥

दुर्बुद्धिमकृतप्रज्ञं छन्नं कूपं तृणैरिव।
विवर्जयीत मेधावी तस्मिन्मैत्री प्रणश्यति ४८

दुर्बुद्धि, और बेसमझ से चतुर पुरुष ऐसे बचा रहे जैसे तृणों से ढंपे कुए से। क्योंकि उस में मित्रता नष्ट होती है॥

अवलिप्तेषु मूर्खेषु रौद्रसाहसिकेषु च।
तथैवापेतधर्मेषु न मैत्रीमाचरेद्बुधः ॥ ४९ ॥

घमण्डियों, मूर्खों, रुलाने वालों, (बिना विचारे) शीघ्र करने वालों, तथा अधर्मियों से चतुर पुरुष मित्रता न करे॥

कृतज्ञं धार्मिकं सत्यमक्षुद्रं दृढभक्तिकम्।
जितेन्द्रियं स्थितं स्थित्यां मित्रमत्यागि चेष्यते५०

मित्र ऐसा चाहिये कि जो कृतज्ञ, धर्मात्मा, सच्चा, गम्भीर, दृढभक्ति वाला, जितेन्द्रिय, अपनी दशा में स्थित हो और छोड़ने वाला न हो॥ ५०॥

इन्द्रियाणामनुत्सर्गो मृत्युनापि विशिष्यते ।
अत्यर्थं पुनरुत्सर्गः सादयेद्दैवतान्यपि ॥५१॥

इन्द्रियों का अपने कामों में न चलना मृत्यु से भी विशेष है परन्तु अत्यन्त चलना देवतों को भी दुःखी करता है ॥

मार्दवं सर्वभूतानामनसूया क्षमा धृतिः ।
आयुष्याणि बुधाः प्राहुर्मित्राणां चाविमानना ।५२।

कोमलता, प्राणिमात्र का बुरा न चेतना, क्षमा, धैर्य और मित्रों का अपमान न करना (इन को) पण्डित लोग आयु का बढ़ाने वाला कहते हैं ॥ ५२ ॥

अपनीतं सुनीतेन योऽर्थं प्रत्यानिनीषते ।
मतिमास्थाय सुदृढां तदकापुरुषव्रतम् ॥५३॥

जो खोई वस्तु को सुचाल से स्थिर बुद्धि के द्वारा फिर लौटा लाना चाहता है, यह सत्पुरुष का काम है ॥

आयत्यां प्रतिकारज्ञस्तदात्वे दृढनिश्चयः ।
अतीते कार्यशेषज्ञो नरोर्थैर्न प्रहीयते ॥५४॥

जो मनुष्य भविष्यत् में प्रतीकार (उपाय) जानता

है, वर्त्तमान में दृढ निश्चय वाला है और व्यतीत हुए में शेष कार्य्य को जानता है वह धनादि से हीन नहीं होता है ॥५४॥

कर्मणा मनसा वाचा यदभीक्ष्णं निषेवते ।
तदेवापहरत्येनं तस्मात्कृत्याणमाचरेत् ॥५५॥

(मनुष्य) मनसा वाचा कर्मणा सदा जो कुछ सेवन करता है वही इस (कर्त्ता) को लगता है इसलिये शुभ ही करे ॥५५॥

मङ्गलालम्भनं योगः श्रुतमुत्थानमार्जवम् ।
भूतिमेतानि कुर्वन्ति सतां चाभीक्ष्णदर्शनम् ।५६।

शुभ कर्म करना, योगसाधन, शास्त्र पढ़ना, निरालस पना, नम्रता, और सदा सत्पुरुषों का दर्शन; ये (बातें) ऐश्वर्य्य को करती हैं ॥५६॥

अनिर्वेदः श्रियो मूलं लाभस्य च शुभस्य च ।
महान्भवत्यनिर्विण्णः सुखं चानन्तमश्नुते ।५७।

निरन्तर प्रवृत्ति, लक्ष्मी लाभ और शुभ की जड़ है। जो निरन्तर प्रवृत्त रहता है वह बड़ा हो जाता है और

अनन्त सुख को भोगता है ॥५७॥

नातः श्रीमत्तरं किञ्चिदन्यत्पथ्यतमं मतम् ।
प्रभविष्णोर्यथा तात ! क्षमा सर्वत्र सर्वदा ॥५८॥

हे तात ! भला चाहने वाले को जैसा कि सदा सब पर क्षमा करना है इस से बढ़कर कोई धनादि देने वाला और अत्यन्त हितसाधक नहीं है ॥५८॥

क्षमेदशक्तः सर्वस्य शक्तिमान्धर्मकारणात् ।
अर्थानर्थौ समौ यस्य तस्य नित्यं क्षमा हिता ॥

दुर्बल हो तो क्षमा करे और प्रबल हो तो धर्मार्थ क्षमा करे । और जिस को अर्थ अनर्थ बराबर हों उस को क्षमा नित्य हितकारक है ॥५९॥

यत्सुखं सेवमानोऽपि धर्मार्थाभ्यां न हीयते ।
कामं तदुपसेवेत न मूढव्रतमाचरेत् ॥ ६० ॥

जिस सुख को भोगता हुवा धर्म और अर्थ को न खोवे उस काम का सेवन करे, मूढ़ों का काम न करे ।६०।

दुःखार्तेषु प्रमत्तेषु नास्तिकेष्वलसेषु च ।
न श्रीर्वसत्यदान्तेषु ये चोत्साहविवर्जिताः ।६१।

दुःखियाओं, प्रमादियों, नास्तिकों, और आलसियों में लक्ष्मी नहीं वास करती और जो लोग उत्साह से रहित हैं (उन में भी) ॥६१॥

आर्जवेन नरं युक्तमार्जवात्सव्यपत्रपम् ।
अशक्तं मन्यमानास्तु धर्षयन्ति कुबुद्धयः ॥६२॥

जो लोग नम्रता से युक्त लज्जा वाले पुरुष को नम्रता से, शक्तिहीन समझते हुए धमकाते हैं, वे कुबुद्धि हैं । (अर्थात् नम्र लज्जालु पाण्डवों को शक्तिहीन समझना, कुबुद्धि है) ॥६२॥

अत्यार्यमतिदातारमतिशूरमतिव्रतम् ।
प्रज्ञाभिमानिनं चैव श्रीर्भयान्नोपसर्पति ॥ ६३ ॥

अति भले मानुष को, अति दाता को, अति शूरवीर को, अति व्रत करने वाले को और बुद्धि के अभिमानी को, लक्ष्मी भय से पास नहीं फटकती ॥६३॥

न चातिगुणवत्स्वेषा नात्यन्तं निर्गुणेषु च ।
नैषा गुणान्कामयते नैर्गुण्यान्नानुरज्यते ॥
उन्मत्तागौरिवान्धा श्रीः क्वचिदेवावतिष्ठते ।६४।

न तो यह (लक्ष्मी) अतिगुण वालों में और न निरे निर्गुणों में प्रीति करती है क्योंकि न तो यह अति गुणों को चाहती न निर्गुण होने से किन्तु उन्मत्त अन्धी गाय के समान लक्ष्मी कहीं ही ठहरती है ॥६४॥

अग्निहोत्रफला वेदाःशीलवृत्तफलं श्रुतम् ।
रतिपुत्रफला नारी दत्तभुक्तफलं धनम् ॥६५॥

वेद पढ़ने का फल अग्निहोत्र है, पढ़ने का फल शील और सदाचार है, स्त्री का फल रति और पुत्र है, धन का फल दान और भोग है ॥ ६५ ॥

अधर्मोपार्जितैरर्थैर्यः करोत्यौर्ध्वदेहिकम् ।
न स तस्य फलं प्रेत्य भुङ्क्तेऽर्थस्य दुरागमात् ।६६।

जो अधर्म से कमाये धनों से अगले जन्म के निमित्त कर्म करता है वह उस का फल न पायगा (क्योंकि) कमाई बुरी होने से ॥६६॥

कान्तारे वनदुर्गेषु कृच्छ्रास्वापत्सु सम्भ्रमे ।
उद्यतेषु च शस्त्रेषु नास्ति सत्त्ववतां भयम् ॥६७॥

बलवानों को वन में, जङ्गल के दुर्गम मार्गों में, कठिन

आपत्तियों में, जल्दी में, उठे हुवे हथियारों में, कहीं भय नहीं है ॥६७॥

उत्थानं संयमो दाक्ष्यमप्रमादो धृतिः स्मृतिः ।
समीक्ष्य च समारम्भो विद्धि मूलं भवस्य तु ॥

उद्यत रहना, नियम से चलना, चातुर्य, प्रमादरहित होना, धैर्य, स्मरण रखना, और विचार कर के करना; (इन को) उन्नति का मूल जानो ॥६८॥

तपो बलं तापसानां ब्रह्म ब्रह्मविदां बलम् ।
हिंसा बलमसाधूनां क्षमा गुणवतां बलम् ॥६९॥

तपस्वियों का बल तप है, ब्रह्मज्ञानियों का बल ब्रह्म है, दुष्टों का बल हिंसा है, गुणियों का बल क्षमा है॥६९॥

अष्टौ तान्यव्रतघ्नानि आपो मूलं फलं पयः ।
हविर्ब्राह्मणकाम्या च गुरोर्वचनमौषधम् ॥७०॥

व्रतभङ्ग को हरने वाली वस्तु ये ८ हैं १-जल २-मूल ३-फल ४-दुग्ध ५-हवि ६ ब्राह्मण की इच्छा ७-गुरु का वचन ८-और औषध (अर्थात् इन ८ से व्रत भंग नहीं होता)॥७०॥

न तत्परस्य सन्दध्यात्प्रतिकूलं यदात्मनः ।

सङ्ग्रहेणैष धर्मः स्यात्कामादन्यः प्रवर्त्तते ।७१।

पराये साथ वह काम न करे, जो अपने आपे को बुरा लगे, संक्षेप से यह धर्म है। काम से और प्रवृत्त होता है ॥७१॥

अक्रोधेन जयेत्क्रोधमसाधुं साधुना जयेत् ।
जयेत्कदर्यं दानेन जयेत्सत्येन चानृतम् ॥७२॥

क्रोध को अक्रोध से जीते, असाधु को साधु से जीते, कृपण को कुछ देकर जीते, झूंठ को सत्य से जीते ॥७२॥

स्त्रीधूर्तकेऽलसे भीरौ चण्डे पुरुषमानिनि ।
चौरे कृतघ्ने विश्वासो न कार्यो न च नास्तिके ॥

स्त्री धूर्त आलसी डरपोक क्रोधी, पौरुष के घमण्डी, चोर कृतघ्न और नास्तिक पर विश्वास न करे ॥७३॥

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः ।
चत्वारि सम्प्रवर्धन्ते कीर्तिरायुर्यशो बलम् ।७४।

वृद्धों की नित्य सेवा करने और उन को प्रणामादि करने वाले के, कीर्त्ति आयु यश और बल ये४ बढ़ते हैं ॥७४॥

अतिक्लेशेन येऽर्थाः स्युर्धर्मस्यातिक्रमेण वा ।

अरेर्वा प्रणिपातेन मास्म तेषु मनः कृथाः ॥७५॥

जो अर्थ अति क्लेश अथवा धर्म के उल्लङ्घन करने वा शत्रु की शरण लेने से सिद्ध हों, उन में मन मत करो ७५

अविद्यः पुरुषः शोच्यः शोच्यं मैथुनमप्रजम् ।
निराहाराः प्रजाः शोच्याःशोच्यं राष्ट्रमराजकम् ॥

विद्यारहित पुरुष शोचनीय है, सन्तान रहित मैथुन शोचनीय है, भूखी प्रजा शोचनीय हैं, विना राजा के राज्य शोचनीय है ॥७६॥

अध्वा जरा देहवतां पर्वतानां जलं जरा ।
असम्भोगो जरा स्त्रीणां वाक्शल्यं मनसो जरा ॥

देहधारियों को मार्ग चलना बुढ़ापा है, पर्वतों को जल बूढ़ा करता है, स्त्रियों को न भोगना बूढ़ी करता है, दुर्वचन मन को जीर्ण करता है ॥७७॥

अनाम्नायमला वेदा ब्राह्मणस्याऽव्रतं मलम्॥७८॥

अभ्यास न करना वेद का मल है, ब्रह्मचर्य्य न करना ब्राह्मण का मल है ॥७८॥

मलं पृथिव्या बाह्लीकाः पुरुषस्यानृतं मलम्।

कौतूहलमला साध्वी विप्रवासमलाः स्त्रियः ।७९।

पृथिवी का बाह्लीक देश (बलख बुखारे) मल है, मनुष्य का झूंठ बोलना मल है, पतिव्रता का खेल (तमाशा) मल है, स्त्रियों का परदेशगमन मल है ॥७९॥

सुवर्णस्य मलं रूप्यं रूप्यस्यापि मलं त्रपु ।
ज्ञेयं त्रपुमलं सीसं सीसस्यापि मलं मलम् ।८०।

सुवर्ण का चान्दी मल है (अर्थात् घटिया वस्तु है) चान्दी का जस्ता मल है, जस्ते का सीसा मल है और सीसे का मैल मल है ॥८०॥

न स्वप्नेन जयेन्निद्रां न कामेन जयेत्स्त्रियः ।
नेन्धनेन जयेदग्निं न पानेन सुरां जयेत् ।८१।

शयन से नींद को न जीते, काम से स्त्रियों न जीते, इन्धन से अग्नि को न जीते, पीने से मदिरा को न जीते, (अर्थात् विषय, भोगने से वश नहीं होते किन्तु दमन से वश हो सकते हैं ॥८१॥

यस्य दानजितंमित्रं शत्रवो युधि निर्जिताः ।
अन्नपानजिता दाराः सफलं तस्य जीवितम् ।८२।

जिस का मित्र दान से आधीन है, शत्रु युद्ध से आधीन हैं, स्त्रियां भोजन पान से आधीन हैं, उस का जीवन सफल है ॥८२॥

सहस्रिणोपि जीवन्ति जीवन्ति शतिनस्तथा।
धृतराष्ट्र ! विमुञ्चेच्छां न कथञ्चिन्नजीव्यते ।८३।

सहस्र वाले भी जीते ही हैं और सौ वाले भी जीते ही हैं। हे धृतराष्ट्र ! तृष्णा को छोड़ क्यों कि किसी प्रकार जीवन न हो यह नहीं है ॥८३॥

यत्पृथिव्यां व्रीहियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः।
नालमेकस्य तत्सर्वमिति पश्यन्न मुह्यति ॥८४॥

(और वैसे तो) पृथिवी पर जितना भर अन्नादि सुवर्ण पशु और स्त्रियां हैं वे सब के सब एक को भी पर्याप्त (काफ़ी) नहीं, इस का विचार करने वाला भूल नहीं करता ॥ ८४ ॥

राजन् भूयो ब्रवीमि त्वां पुत्रेषु सममाचर।
समता यदि ते राजन् स्वेषु पाण्डुसुतेषु वा ॥

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि अष्टत्रिंशोऽ-

ध्यायः ॥३७॥ विदुरहितवाक्ये प्रजागरपर्वणि च सप्तमः ॥७॥

हे राजा! मैं फिर तुझ से कहता हूं कि पुत्रों में एक सा व्यवहार कर। यदि तुझ में समता है तो अपनों में अथवा पराइयों में (एक भाव रख) ॥८५॥

यह महाभारत उद्योगपर्व में अड़तीसवां ३८ और विदुर के हितकारक वाक्यरूप प्रजागर पर्व में सातवां अध्याय हुवा ॥७॥

योभ्यर्चितः सद्भिरसज्जमानः करोत्यर्थं शक्तिमहापयित्वा। क्षिप्रं यशस्तं समुपैति सन्तमलं प्रसन्नं हि सुखाय सन्तः ॥१॥

(विदुर जी कहते हैं) जो शक्ति को नष्ट न करके सज्जनों के कहने से काम कर देता है और उस में आसक्त भी नहीं होता, उस सज्जन को शीघ्र यश प्राप्त होता है क्योंकि प्रसन्न सज्जन लोग सुख के लिये योग्य होते ही हैं॥

महान्तमप्यर्थमधर्मयुक्तं यः सन्त्यजत्यनपाकृष्ट एव। सुखं सुदुःखान्यवमुच्य शेते जीर्णां त्वचं

सर्प इवावमुच्य ॥२॥

जो अधर्मयुक्त बड़े भारी अर्थ को त्याग देता है वह औरों से न दबाया हुवा ही दुःखों को छोड़ सुख से सोता है जैसे पुराणी त्वचा को छोड़ कर सर्प ॥२॥

अनृते च समुत्कर्षो राजगामि च पैशुनम् ।
गुरोश्चालीकनिर्बन्धः समानि ब्रह्महत्यया ॥३॥

झूंठ बोलने का उत्साह, राजा से चुगली पहुंचाना, गुरु को दोष लगाना; ये ब्रह्महत्या के समान हैं ॥३॥

असूयैकपदं मृत्युरतिवादः श्रियो वधः ।
अशुश्रूषा त्वरा श्लेषा विद्यायाः शत्रवस्त्रयः ।४।

गुणों में दोषारोपण एक दम मृत्यु है, बढ बोलापन लक्ष्मी का नाशक है। शुश्रूषा न करना, जल्दी और लिपटना ये ३ विद्या के शत्रु हैं ॥ ४ ॥

आलस्यं मदमोहौ च चापलं गोष्ठिरेव च ।
स्तब्धता चाभिमानित्वं तथा त्यागित्वमेव च ।५।

१ आलस्य २ मद ३ मोह ४ चञ्चलता ५ गोष्ठी=बहुतों से एकान्त में वार्त्तालाप ६ नम्रता न होना ७ अभि-

मानी धन ॥ ५ ॥

एते वै सप्त दोषाः स्युः सदा विद्यार्थिनां मताः।
सुखार्थिनः कुतो विद्या नास्ति वि द्यार्थिनः सुखम् ६

निश्चय ये सात सदा विद्यार्थियों के दोष हैं ॥ सुख चाहने वाले को विद्या कहां, विद्यार्थी को सुख नहीं ॥६॥

सुखार्थी वा त्यजेद्विद्यां विद्यार्थी वा त्यजेत्सुखम् ॥
नाग्निस्तृप्यति काष्ठानां नापगानां महोदधिः ।
नान्तकः सर्वभूतानां न पुंसां वामलोचनाः ॥७॥

इसलिये सुख चाहने वाला विद्या को त्याग दे अथवा विद्यार्थी सुख को त्याग दे ॥

अग्नि काष्ठों से तृप्त नहीं होता, समुद्र नदियों से तृप्त नहीं होता, मृत्यु प्राणियों से और स्त्रियां पुरुषों से तृप्त नहीं होतीं ॥ ७ ॥

आशा धृतिं हन्ति समृद्धिमन्तकः क्रोधः श्रियं हन्ति यशः कदर्यता । अपालनं हन्ति पशूंश्च राजन्येकः क्रुद्धो ब्राह्मणो हन्ति राष्ट्रम् ॥८॥

आशा धैर्य को मारती है, मृत्यु समृद्धि को, क्रोध लक्ष्मी

को, कुव्यवहार यज्ञ को और न पालना पशुओं को मारता है और हे राजा! क्रुद्ध हुवा एक ब्राह्मण राज्य को नष्ट कर देता है ॥ ८ ॥

अजाश्वकांस्यं रजतं च नित्यं मध्वाकर्षः शकुनिः श्रोत्रियश्च । वृद्धोज्ञातिरवसन्नः कुलीन एतानि ते सन्तु गृहे सदैव ॥९॥

बकरी घोड़े कांसी चान्दी मधु पक्षी वेदपाठी, वृद्ध भाई, दुःखी कुलीन; ये नित्य तुम्हारे गृह पर सदा ही (विश्राम पावें) रहें ॥ ९ ॥

अजेक्षा चन्दनं वीणा आदर्शो मधुसर्पिषी । विषमौदुम्बरं शङ्खः स्वर्णनाभोथ रोचना ॥१०॥

बकरी बैल चन्दन सितार दर्पण मधु घृत विष गूलर का पात्र शङ्ख स्वर्णनाभ और गोरोचन ॥ १० ॥

गृहे स्थापयितव्यानि धन्यानि मनुरब्रवीत् । देवब्राह्मणपूजार्थमतिथीनां च भारत! ॥११॥

हे भारत! ये (१० श्लो०) धन्य हैं इन्हें देव ब्राह्मण की पूजार्थ और अतिथि सत्कारार्थ घर में स्थापन करे ॥११॥

इदं च त्वां सर्वपरं ब्रवीमि पुण्यं पदं तात! महा विशिष्टम् । न जातु कामान्न भयान्न लोभाद्धर्मं जह्याज्जीवितस्यापि हेतोः ॥१२॥

और हे तात! यह तो मैं तुम से सब से पीछे कहता हूं जो कि पवित्र और महाविशेष पद है कि-काम भय लोभ और जीवन के लिये भी कभी धर्म को न त्यागे ॥१२॥

नित्यो धर्मःसुखदुःखे त्वनित्ये जीवो नित्यो हेतुरस्य त्वनित्यः । त्यक्त्वाऽनित्यं प्रतितिष्ठस्व नित्यं सन्तुष्य त्वं तोषपरो हि लाभः ॥१३॥

(क्योंकि) धर्म नित्य है सुख दुःख तो अनित्य हैं। जीव नित्य है और उस का हेतु (प्राण) अनित्य है। तू अनित्य को छोड़ कर नित्य में प्रतिष्ठित हो और सन्तोष कर क्योंकि सन्तोष ही परम लाभ है ॥ १३ ॥

महाबलान्पश्य महानुभावान्प्रशास्य भूमिं धनधान्यपूर्णाम् । राज्यानि हित्वा विपुलांश्च भोगान् गतान्नरेन्द्रान्वशमन्तकस्य ॥१४॥

बड़े प्रभावशाली बलवान् राजों को देखो, जो धनधान्य

से भरपूर पृथिवी को शासित करके, राज्यों और बड़े २ भोगों को छोड़ कर, मृत्यु के वश को प्राप्त होगये ॥१४॥

मृतं पुत्रं दुःखपुष्टं मनुष्या उत्क्षिप्य राजन् स्वगृहान्निर्हरन्ति। तं मुक्तकेशाः करुणं रुदन्ति चितामध्ये काष्ठमिव क्षिपन्ति ॥१५॥

दुःख से पाले हुवे मरे पुत्र को मनुष्य लोग उठा कर अपने गृह से बाहर फैंक आते हैं, उस को खुले बालों करुणा पूरित रोते हैं और चिता के बीच लकड़ी सी फैंक (झोंक) देते हैं ॥ १५ ॥

अन्यो धनं प्रेतगतस्य भुङ्क्ते वयांसि चाग्निश्च शरीरधातून्। द्वाभ्यामयं सह गच्छत्यमुत्र पुण्येन पापेन च वेष्ट्यमानः ॥१६॥

मर गये के धन को अन्य भोगता है, शरीर के धातुओं को पक्षी और अग्नि। यह दो के साथ परलोक को जाता है (अर्थात्) पुण्य तथा पाप से लिपटा हुवा ॥१६॥

उत्सृज्य विनिवर्तन्ते ज्ञातयः सुहृदः सुताः। अपुष्पानफलान्वृक्षान् यथा तात! पतत्रिणः १७

हे तात ! भाई मित्र पुत्र सब ऐसे छोड़ कर लौट आते हैं जैसे पुष्प और फलों से रहित वृक्षों को पक्षी ॥

अग्नौ प्रास्तं तु पुरुषं कर्मान्वेति स्वयङ्कृतम् ।
तस्मात्तु पुरुषो यत्नाद्धर्मं सञ्चिनुयाच्छनैः॥१८॥

अग्नि में फैंके हुवे पुरुष के साथ अपना किया कर्म पीछे जाता है इसीलिये मनुष्य यत्न से शनैः २ धर्म को सञ्चित करे ॥ १८ ॥

अस्माल्लोकादूर्ध्वममुष्य चाधो महत्तमस्तिष्ठति ह्यन्धकारम् । तद्वै महामोहनमिन्द्रियाणांबुध्यस्व मा त्वां प्रलभेत राजन्! ॥१९॥

हे राजा ! इस लोक (शरीर) से ऊपर और इस के नीचे बड़ा गाढा अन्धकार रहता है, वह इन्द्रियों का बड़ा अचेत करने वाला है। तुम जान जाओ (जिस से) वह (अन्धकार) तुम्हें न प्राप्त हो ॥ १९ ॥

इदं वचः शक्ष्यसि चेद्यथावन्निशम्य सर्वं प्रतिपत्तुमेव । यशः परं प्राप्स्यसि जीवलोके भयं न चामुत्र न चेह तेऽस्ति ॥२०॥

यदि तुम (मेरे) इस वचन को पूरा सुन कर ठीक २ तदनुकूल कर सकोगे तो संसार में बड़ा यश लोगे और इस लोक तथा परलोक में तुम्हें कुछ भय नहीं है ॥ २०॥

आत्मा नदी भारत पुण्यतीर्था सत्योदका धृति-
कूला दयोर्मिः । तस्यां स्नातः पूयते पुण्यकर्मा
पुण्यो ह्यात्मा नित्यमलोभ एव ॥२१॥

हे भारत ! आत्मा नदी है, पुण्य उस का घाट है, सत्य उस का जल है, धैर्य किनारे हैं, दया लहर है, पुण्यकर्त्ता उस नदी में न्हाया हुआ पवित्र होता है, परन्तु जो लोभरहित है वह तो सदा ही पवित्र है ॥२१॥

कामक्रोधग्राहवतीं पञ्चेन्द्रियजलां नदीम् ।
नावं धृतिमयीं कृत्वा जन्मदुर्गाणि सन्तर ॥२२॥

काम और क्रोध जिस में ग्राह हैं, ५ इन्द्रियां जिस का जल हैं, ऐसी नदी को धैर्यमयी नौका बनाकर जन्मरूप दुर्ग को पार हो जाओ ॥ २२ ॥

प्रज्ञावृद्धं धर्मवृद्धं स्वबन्धुं विद्यावृद्धं वयसा चापि
वृद्धम् । कार्याकार्ये पूजयित्वा प्रसाद्य यःसम्पृ-

च्छेन्न स मुह्येत्कदाचित् ॥२३॥

जो बुद्धि में बड़े, धर्म में बड़े, विद्या में बड़े, और आयु में बड़े अपने भाई को कार्य्य अकार्य में सत्कृत और प्रसन्न करके अच्छे प्रकार पूंछता है वह कभी भूल नहीं करता ॥ २३ ॥

धृत्या शिश्नोदरं रक्षेत्पाणिपादं च चक्षुषा ।
चक्षुःश्रोत्रे च मनसा मनो वाचं च कर्मणा २४

उपस्थेन्द्रिय (गुह्य) और पेट को धैर्य से बचावे, हाथ पांव को आंख से, आंख कान को मन से, और मन वाणी को कर्म से (बचावे) ॥ २४ ॥

नित्योदकी नित्ययज्ञोपवीती नित्यस्वाध्यायी पतितान्नवर्जी। सत्यं ब्रुवन्गुरवे कर्म कुर्वन्न ब्राह्मणश्च्यवते ब्रह्मलोकात् ॥२२॥

नित्य जल से शरीर शोधने वाला, नित्य यज्ञोपवीत पहिरने वाला, नित्य वेदपाठी, पतित अन्न का वर्जने वाला, सत्यभाषी, गुरु के लिये काम करने वाला ब्राह्मण ब्रह्मलोक से पतित नहीं होता ॥ २५ ॥

अधीत्य वेदान्परिसंस्तीर्य चाग्नीनिष्ट्वा यज्ञैः पालयित्वा प्रजाश्च । गोब्राह्मणार्थे शस्त्रपूतान्तरात्मा हतः सङ्ग्रामे क्षत्रियः स्वर्गमेति ॥२६॥

वेदों को पढ़ कर, अग्नि का आधान करके, यज्ञों से देवयजन करके, और प्रजाओं का पालन करके, गो ब्राह्मण की (रक्षा) के लिये शस्त्र (धारण) से जिस का अन्तरात्मा पवित्र है वह सङ्ग्राम में मारा गया क्षत्रिय स्वर्ग को प्राप्त होता है ॥२६॥

वैश्योऽधीत्य ब्राह्मणान्क्षत्रियांश्च धनैः काले संविभज्याश्रितांश्च । त्रेतापूतं धूममाघ्राय पुण्यं प्रेत्य स्वर्गे दिव्यसुखानि भुङ्क्ते ॥२७॥

जो वैश्य विद्या पढ़ कर, ब्राह्मणों और क्षत्रियों तथा आश्रितों को समय पर धनों से सत्कृत करके, (आहवनीय गार्हपत्य दक्षिणाग्नि) इन तीन के पवित्र धुवें को सूंघ कर मर कर स्वर्ग में दिव्य सुखों को भोगता है।

ब्रह्मक्षत्रं वैश्यवर्णं च शूद्रः क्रमेणैतान्न्यायतः पूजयानः । तुष्टेष्वेतेष्वव्यथो दग्धपापस्त्यक्त्वा

देहं स्वर्गेसुखानि भुङ्क्ते ॥२८॥

जो शूद्र क्रम से ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य की न्याय पूर्वक सेवा करने वाला है वह इन (ब्राह्मणादि ३) के सन्तुष्ट करने पर, दुःखरहित पाप से मुक्त देह को छोड़कर स्वर्ग के सुखों को भोगता है ॥२८॥

चातुर्वर्ण्यस्यैष धर्मस्तवोक्तो हेतुं चानुब्रुवतो मे निबोध । क्षात्राद्धर्माद्धीयते पाण्डुपुत्रस्तं त्वं राजन् राजधर्मे नियुङ्क्ष्व ॥२९॥

यह चारों वर्णों का धर्म तुम से वर्णन किया इस (वर्णन) का कारण सुनो-पाण्डु का पुत्र (युधिष्ठिर) क्षत्रियों के धर्म से हीन हुवा जाता है, हे राजा ! तुम उस को राजधर्म में नियुक्त करो (कुछ भाग देदो) ॥२९॥

धृतराष्ट्र उवाच ।

एवमेतद्यथा त्वं मामनुशाससि नित्यदा ।
ममापिच मतिःसौम्य भवत्येवं यथात्थमाम् ३०

धृतराष्ट्र बोले कि-यह ठीक है जैसा कि तुम मुझे सदा समझाते हो, हे सौम्य ! मेरी भी समझ यही है जैसा कि तुम मुझ से कहते हो ॥३०॥

सा तु बुद्धिः कृताप्येवं पाण्डवान्प्रति मे सदा।
दुर्योधनं समासाद्य पुनर्विपरिवर्तते ॥३१॥

परन्तु यह सबकी पाण्डवों के प्रति इस प्रकार किई हुई भी दुर्योधन के समीप जाते ही फिर उलटी हो जाती है ३१

न दिष्टमभ्यतिक्रान्तुं शक्यं भूतेन केनचित्।
दिष्टमेव ध्रुवं मन्ये पौरुषं तु निरर्थकम् ॥३२॥

कोई प्राणी प्रारब्ध का उल्लङ्घन नहीं कर सकता, प्रारब्ध को ही स्थिर मानता हूं, पुरुषार्थ तो व्यर्थ है ।३२।

इति श्री महाभारते उद्योगपर्वणि एकोनचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३९ ॥ विदुरहितवाक्ये प्रजागरपर्वणि चाऽष्टमोऽध्यायः ॥८॥
समाप्ता च विदुरनीतिः ॥

यह महाभारत उद्योगपर्व में उनतालीसवां ३९ और विदुर के हितकारक वाक्यरूप प्रजागरपर्व में ८ वां अध्याय हुवा और विदुरनीति भी समाप्त हुई ॥ इति ॥

—*—

2753

सामवेदभाष्य

विद्यालय, कुरुक्षेत्र

यह भाष्य मासिक अङ्कवार ४० पृष्ठ रायल ८ पेजों में सुन्दर चिकने पुष्ट काग़ज़ पर प्रकाशित होता है, इस में प्रथम मन्त्र के ऋषि देवता छन्द लिखे हैं, फिर मूलमन्त्र स्वर सहित, फिर प्रथमा द्वि० तृ० च० पं० ष० सप्तमी विभक्तियों के अङ्कों सहित तथा क्रिया पद के क्रि० अव्यय के अ० इत्यादि संकेतपूर्वक पदच्छेद है, फिर संस्कृत में अन्वित पदार्थ भावार्थ जिस में निरुक्तादि के प्रमाण तथा युक्ति और सरलता के साथ विषय का प्रतिपादन है, तदनन्तर भाषार्थ में भी अन्वित पदार्थ भावार्थ बड़ी सरल रीति से लिखा जाता है। यदि वह मन्त्र ऋग्वेद में आया हो तो वहां का पता वा पाठभेद आदि भी लिख दिया जाता है। मूल्य डाकव्यय सहित इस प्रकार है—समस्त भाष्य का अग्रिम मूल्य ५) मात्र। वार्षिक देने वाले नगरनिवासी हों वा बाहर के। सब से ३) वार्षिक १२ अङ्क का अग्रिम। उधार किसी को नहीं। नमूने मात्र का प्रथम अङ्क ।)॥ भेजने पर मिलेगा परन्तु नमूना मंगाने वाले जब ग्राहक हो कर पूरे वा वार्षिक मूल्य भेजें तब ।) कम भेजें जो नमूने में आगया।

पता—भाष्यकार—तुलसीराम स्वामी—मेरठ